वाराणसी

ओशो का प्रथम प्रवचन

राजघाट बसंत कॉलेज वाराणसी

12 अगस्त, 1968

मेरे प्रिय आत्मन्,

एक छोटी-सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं। एक महानगरी में एक नया मंदिर बन रहा था। हजारों श्रमिक उस मंदिर को बनाने में संलग्न थे, पत्थर तोड़े जा रहे थे, मूर्तियां गढ़ी जा रही थीं, दीवालें उठ रही थीं, एक परदेशी व्यक्ति उस मंदिर के पास से गुजर रहा था। पत्थर तोड़ रहे एक मजदूर से उसने पूछा, मेरे मित्र क्या कर रहे हो? उस मजदूर ने क्रोध से अपनी हथौड़ी नीचे पटक दी, आंखें ऊपर उठाइ जैसे उन आंखों में आग की लपटें हों, ऐसे उस मजदूर ने उस अजनबी को देखा और कहा—अंधे हैं, दिखाई नहीं पड़ता है, पत्थर तोड़ रहा हूं। यह भी पूछने और बताने की जरूरत है और वापस उसने पत्थर तोड़ना शुरू कर दिया। वह अजनबी तो बहुत हैरान हुआ। ऐसी तो कोई बात उसने नहीं पूछी थी कि इतने क्रोध से उत्तर मिले, वह आगे बढ़ा और उसने मशगूल दूसरे मजदूर से, वह मजदूर भी पत्थर तोड़ता था, उससे भी उसने यही पूछा कि मेरे मित्र क्या कर रहे हो, जैसे उस मजदूर ने सुना ही न हो, बहुत देर बाद उसने आंखें ऊपर उठाइ, सुस्त और उदास हारी हुई आंखें जिनमें कोई ज्योति न हो, जिनमें कोई भाव न हो और उसने कहा कि क्या कर रहा हूं, बच्चों के लिए, पत्नी के लिए रोजी-रोटी कमा रहा हूं। उतनी ही उदासी और सुस्ती से उसने फिर पत्थर तोड़ना शुरू कर दिया। वह अजनबी आगे बढ़ा और उसने तीसरे मजदूर से पूछा वह मजदूर भी पत्थर तोड़ता था। लेकिन वह पत्थर भी तोड़ता था और साथ में गीत भी गुनगुनाता था। उसने उस मजदूर से पूछा मेरे मित्र क्या कर रहे हो? उस मजदूर ने आंखें ऊपर उठाइ जैसे उन आंखों में फूल झड़ रहे हों खुशी से, आनंद से भरी हुई आंखों से उसने उस अजनबी को देखा और कहा—देखने नहीं भगवान का मंदिर बना रहा हूं। उसने फिर गीत गाना शुरू कर दिया और पत्थर तोड़ना शुरू कर दिया। वे तीनों व्यक्ति ही पत्थर तोड़ रहे थे, वे तीनों व्यक्ति ही एक ही काम में संलग्न थे लेकिन एक क्रोध से तोड़ रहा था, एक उदासी से तोड़ रहा था, एक आनंद के भाव से। जो क्रोध से तोड़ रहा था उसके लिए पत्थर तोड़ना सिर्फ पत्थर तोड़ना था, और निश्चय ही पत्थर तोड़ना कोई आनंद की, कोई अहोभाग्य की, बात नहीं हो सकती और जो पत्थर तोड़ रहा था स्वभावतः सारे जगत के प्रति क्रोध से भर गया हो तो आश्चर्य नहीं, जिसे जीवन में पत्थर ही तोड़ना पड़ता है, वह जीवन के प्रति धन्यता का कृतज्ञता का, भाव कैसे प्रकट कर सकता है। दूसरा व्यक्ति भी पत्थर तोड़ रहा था। लेकिन उदास था, हारा हुआ था। जो जीवन को केवल आजीविका बना ले, जो जीवन को केवल रोजी-रोटी का अवसर बना ले, वह स्वभावतः ही उदास और हारा हुआ हो जाने को है। जीवन आजीविका बन कर आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकता, तब जीवन होगा एक बोझ, तब जीवन होगा एक हारा हुआ उपक्रम, जिसमें प्रतिपल मृत्यु निकट आती चली जाती है, जिसे किसी तरह ढोना है और पूरा कर लेना है, वह आनंद का एक गीत नहीं, उदासी की एक कथा है, वह आनंद का एक उत्सव नहीं, कर्तव्य का एक बोझ है, जिसे निपटा देना है। तीसरा व्यक्ति आनंद से तोड़ता था, पत्थर को वह भी तोड़ रहा था। वे पत्थर भी ठीक वैसे ही पत्थर थे जैसे दूसरे मजदूर तोड़ रहे थे। उसके पत्थर तोड़ने के क्रम में भी कोई भेद न था, लेकिन वह भगवान का मंदिर बना रहा था, जीवन वह अगर आनंद को उपलब्ध हो जाए तो आश्चर्य कैसा। जीवन वही हो जाता है, जिस भाव को लेकर हम जीवन में प्रविष्ट होते हैं, जीवन वही हो जाता है, जो हम उसे बनाने को आतुर, उत्सुक और प्यासे होते हैं। जीवन मिलता नहीं, निर्मित करना होता है। जीवन बना-बनाया उपलब्ध नहीं होता सर्जन करना होता है। जन्म के साथ मिलता है अवसर, जीवन नहीं। केवल जीवन पैदा हो सके, ऐसा अवसर उस अवसर को हम खो भी सकते हैं, साधारणतः खो ही देते हैं। उस अवसर को हम विकृत भी कर सकते हैं—साधारणतः कर ही देते हैं। वह अवसर दुर्भाग्य भी बन सकता है। साधारणतः बन ही जाता है। लेकिन उस अवसर को एक आनंद उत्सव में भी परिणत किया जा सकता था। किया जा सकता है शायद लेकिन उसके सूत्र बहुत स्पष्ट नहीं, पहली बात—इसलिए जीवन की कला में पहली बात आपसे कहना चाहूंगा, वह यह कि जो व्यक्ति ऐसा समझ लेता है वह यह कि जीवन इसे मिल गया है—जन्म के साथ वह जीवन की कला को कभी भी नहीं सीख पाएगा। कला तो उसकी सीखनी पड़ती है, जो मिला नहीं है, जिसे अर्जित करना होता है, कला तो उसकी सीखनी होती है, जो हाथ में नहीं है, लेकिन

हाथ में आ सकता है। कला तो उसकी सीखनी होती है, जो वास्तविक नहीं है, केवल संभावना है। लेकिन वास्तविक बन सकता है, लेकिन सारे जगत में हजारों वर्षों से हमारे मन में यह भाव सुदृढ़ हो गया है कि जीवन हमें उपलब्ध है। जन्म के साथ जीवन हमें मिल गया है, यह भ्रांति है। यह प्रथम से ही गलत आधार है। अगर जीवन मिल गया है, तो जीवन को निर्मित और सजग करने का प्रश्न कहां जीवन? मिला नहीं है। मैं किसी व्यक्ति को एक वीणा देखकर कह रहा था और वह व्यक्ति समझ ले कि संगीत मिल गया तो भूल हो जाएगी। वीणा संगीत है। संगीत के जन्म का एक अवसर जरूर है। एक मौका है कि वीणा संगीत बन सकती है, लेकिन वीणा संगीत नहीं है और जो वीणा को ही संगीत समझ ले वह फिर वीणा वादन की कला सीखने को क्यों जाने को है। कोई खास कारण नहीं। फिर तो वीणा को ही ढोता फिरेगा, कभी उससे संगीत पैदा नहीं होगा और कभी तार छू भी जाएंगे अनजाने में तो विसंगीत पैदा करेंगे। तो आनंद नहीं, मन की शांति भंग करेंगे और वीणा को ढोना एक बोझ हो जाएगा और वीणा से छूटने की आकांक्षा मन में गहरी होने लगेगी। वीणा से मुक्ति पाने का उपाय और चेष्टा करने लगे तो वह भी स्वाभाविक है। जीवन को भी हमने वीणा की तरह कंधे पर रख लिया है, लेकिन उससे संगीत पैदा करने की कला न प्रश्न है, न विचार है और इसलिए जीवन धीरे-धीरे बोझ हो गया है। सारे जगत में हजारों शिक्षक पैदा हुए, जिनकी शिक्षा का मूल आधार इतना ही है कि जीवन से मुक्त कैसे हुआ जा सकता है? जिनकी शिक्षा का कुल सूत्र, कुल केंद्र इतना ही है कि जीवन से छुटकारा कैसे पाया जा सके। मोक्ष कैसे मिल सकता है, मुक्ति कैसे मिल सकती है, आवागमन के बाहर कैसे हो सकते हैं, मनुष्य-जाति हजारों साल से इसी दुर्भाग्यपूर्ण विचार से नीचे जी रही है। जीवन से कैसे छूटा जाए और ये बात इसलिए पैदा हो सकी, क्योंकि हम जीवन की कला को विकसित नहीं कर पाए। जीवन की कला विकसित हो, जीवन का अनुभव हो, वह जीवन ही मोक्ष है। जीवन के बिना कहीं कोई मोक्ष नहीं। जीवन का पूर्ण अनुभव हो तो जीवन ही परमात्मा है, जीवन से अन्यथा कोई परमात्मा नहीं। लेकिन जीवन में हारे हुए लोग, जीवन में असमर्थ पराजित जीवन के विरोध में एक परमात्मा नहीं। लेकिन जीवन में हारे हुए लोग, जीवन में असमर्थ पराजित जीवन के विरोध में एक परमात्मा की कल्पना कर लिए हैं। वह परमात्मा मृत्यु का ही साकार रूप है। जीवन को न जीने में, जीवन को जी पाने में, जीवन की खोज में जो थक गए हैं, हार गए हैं उन्होंने मोक्ष की कल्पना, एक धारणा बना रखी है। वह मोक्ष की कल्पना परिपूर्ण मृत्यु के अतिरिक्त और भी नहीं है। चूंकि हम जीवन की कला विकसित नहीं कर पाए, इसलिए हमने मरने के ढंग विकसित किए और यही वजह है कि आज तक पृथ्वी के सारे धर्म जीने की कला नहीं सिखाते, मरने की व्यवस्था मरने का ढंग सिखाते हैं। सब सारे धर्म आत्मघाती हैं। (स्युसाइडल) हैं। कैसे कोई व्यक्ति जीवन को छोड़ दे, कैसे जीवन की जड़ें टूट जाएं, कैसे हम जीवन से विमुक्त हो जाएं, कैसे जीवन से हमारा सारा संबंध विच्छिन्न हो जाए, हमने इसी प्रक्रिया को आज तक संन्यास और धार्मिक आदमी की साधना कहा है। न तो यह संन्यास है, न साधना है, न धर्म का स्वरूप। धर्म मृत्यु नहीं सिखाता। धर्म सिखाता है परिपूर्ण जीवन। धर्म भागना नहीं सिखाता है। धर्म सिखाता है जीना। धर्म मरना नहीं सिखाता, वरन् विपरीत अमृत कैसे उपलब्ध हो सके, उसकी खोज। लेकिन हम जीवन के प्रथम चरण में ही गलत धारणा लेकर चलें, तो स्वभावतः यही परिणाम हो सकता है, जो हुआ। मनुष्य जाति आज तक जीवन की गलत धारणा लेकर चल रही है, और यह गलत धारणा यह है कि हमने मान लिया है कि हमें जन्म के साथ जीवन उपलब्ध हो गया है। जन्म के साथ किसी को भी जीवन उपलब्ध नहीं हुआ है, बीज में वृक्ष छिपा है लेकिन बीज वृक्ष नहीं है। और जो माली बीज को ही वृक्ष समझ ले, फिर उसकी बगिया में वृक्ष कैसे पैदा हो सकते हैं। बीज केवल संभव है कि वृक्ष बन जाए। बीज में छिपा है, कुछ जो वृक्ष बन सकता है और नहीं भी बन सकता। अगर वृक्ष के लिए सारी सुविधा हमने बीज के आसपास जुटा ली, भूमि, खाद, पानी, सूरज का प्रकाश, सुरक्षा तो शायद बीज वृक्ष बन ही जाए। लेकिन बीज बिना वृक्ष बने नष्ट भी हो सकता है। और मनुष्य-जाति के अधिकतम बीज बिना वृक्ष बने नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि हमने एक बुनियादी गलत धारणा से जीवन की शुरुआत की है, वह यह कि जीवन हमें मिल गया। हम अपने को जीवित समझ रहे हैं, यह भूल है। हम सिर्फ जन्मे हैं, जीवित अभी नहीं हैं। जीवित तो हम तब होंगे जब जीवन उपलब्ध होगा, जब वह जो बीज हमारे भीतर छिपा है, वह फूटेगा, टूटेगा, अंकुरित होगा और उसमें फूल आएंगे। हम अभी केवल जन्मे हैं। यह बात दूसरी है कि एक बच्चे को जन्मे हुए एक दिन हुआ है और बूढ़े को जन्में सत्तर वर्ष हुए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आपको जन्में हुए कितना समय हो

गया है। जीवित होना बात ही और है।

गौतम बुद्ध ने एक सुबह एक भिक्षु से पूछा, वह भिक्षु नया-नया ही दीक्षित हुआ था। संन्यासी हुआ था। बुद्ध ने पूछा कि भिक्षु तुम्हारी उम्र कितनी है, तुम्हारी उम्र कितनी है तुम्हारी अवस्था क्या है? वह भिक्षु हंसने लगा और उसने कहा कि अब तक तो मैं समझता था कि साठ वर्ष है, लेकिन जीवन का कोई अनुभव नहीं हुआ था कि जीवन की कोई किरण मेरे प्राणों तक प्रविष्ट नहीं हुई थी, जीवन का कोई भी संगीत नहीं सुना था। जीवन के किसी सौंदर्य के कोई दर्शन नहीं हुए थे। हृदय धड़कता था श्वास चलती थी,तो मैं समझता था यही जीवन है। अब कह सकता हूं, चार वर्ष है मेरी उम्र और भी भिक्षु मौजूद थे, बुद्ध ने उन भिक्षुओं से कहा तुम भी अपनी उम्र आज से इस भांति गिनना। मैं भी आपसे कहना चाहता हूं कि उम्र जन्म के साथ गिनना बिलकुल व्यर्थ है। वह जीवन की उम्र नहीं, जीवन के साक्षात्कार के बाद जीवन की उम्र शुरू होती है। लेकिन हम तो जन्म को जीवन समझ बैठे हैं। तो पहली बात मैं कहना चाहता हूं कि जन्म जीवन नहीं है। अगर बहुत गौर से देखें तो जन्म जीवन तो बिलकुल नहीं है। लेकिन जन्म मृत्यु जरूर है। जिस दिन हम पैदा होते हैं, उस दिन मरना भी शुरू हो जाता है। जन्म का पहला दिन मृत्यु की ही यात्रा का प्रथम चरण है। कोई आदमी अचानक थोड़े ही मर जाता है। हम रोज धीरे-धीरे मरते रहते हैं। और एक दिन मरने की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। हम यहां बैठे हैं, हम प्रतिपल मर रहे हैं, कुछ हमारे भीतर टूट रहा है और नष्ट हो रहा है, जिसे हम जन्म कहते हैं, वह मृत्यु का ही दूसरा छोर है, वह मृत्यु का ही प्रारंभ है, वह मृत्यु की ही शुरुआत है। तो जन्म जीवन तो कतई है ही नहीं। मृत्यु जरूर हो सकता है और इसीलिए इस जन्म को ही जो लोग जीवन समझ लेते हैं उनका सारा समय मृत्यु की चेष्टा से बचने के अतिरिक्त और किसी चीज में व्यस्त नहीं होता। चारों तरफ देखें—आदमी क्या करता हुआ दिखाई पड़ता है। सारी चेष्टा मृत्यु से बचने की चेष्टा है। सारे आयोजन मृत्यु से बचने के आयोजन हैं। सारी व्यवस्था मृत्यु की सुरक्षा की व्यवस्था है और जानते हुए कि मृत्यु से कोई सुरक्षा नहीं, मृत्यु से कोई बचाव नहीं, मृत्यु होनी है। लेकिन जिन लोगों ने जन्म को जीवन समझ लिया है, स्वभावतः उनका पूरा जीवन मृत्यु से बचने की प्रक्रिया में परिवर्तित हो जाएगा, क्योंकि जन्म मृत्यु की शुरुआत है—जीवन नहीं।

एक भिक्षु को किसी ने जाकर पूछा था कि मुझे जीवन और मृत्यु के संबंध में कुछ बताएं। वह भिक्षु हंसने लगा और उसने कहा अगर जीवन के संबंध में कुछ जानना हो तो मैं बता सकता हूं। मृत्यु के संबंध में बताने में असमर्थ हूं, क्योंकि मृत्यु को मैं जानता नहीं, पहचानता नहीं और जबसे मैंने जीवन को जाना है तब से मृत्यु जैसी कोई चीज रह नहीं गई। अगर मृत्यु से संबंध में कुछ जानना हो तो मुर्दे लोगों से पूछो जिनसे नगर भरे हैं और जीवन के संबंध में जानना हो तो जरूर मैं कुछ कह सकता हूं।

एक सूफी फकीर था इब्राहिम। एक गांव के बाहर रहता था। गांव के भीतर जाने वाले लोग उससे पूछते कि बस्ती का रास्ता कहां है? तो वह कहता था कि भूल कर भी बाएं मत जाना। बाएं की तरफ मरघट है और दाएं जाना। दाएं की तरफ बस्ती है। जो यात्री उसकी बात मान कर दाएं चले जाते—मील दो-मील चल कर मरघट पहुंच जाते तो बहुत क्रोध में लौटते और कहते इब्राहिम से कि तुम पागल हो गए हो। तुमने हमें कहा दाएं जाना, वहां बस्ती है, बाएं मत जाना, वहां, मरघट है। बाएं गए, वहां तो मरघट मिला, व्यर्थ हमें परेशान किया। इब्राहिम कहता कि मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि जिसे तुम बस्ती करते हो वह मरघट है, क्योंकि वहां हर आदमी सिवाय मरने के और कुछ भी करने को नहीं, और जिसे तुम मरघट करते हो उसे मैंने बस्ती जाना, क्योंकि वहां जो एक बार बस गया उसे कभी उजड़ते नहीं देखा, जो वहां बस जाता है कभी छोड़कर नहीं जाता है। तो जिसे हम जीवन समझ रहे हैं, वह जीवन नहीं है। अगर यह स्मरण न आए तो जीवन की कला का क, ख, ग, भी नहीं सीखा जा सकता है। अगर यह ही जीवन है तो बात समाप्त हो गई। फिर सीखने को कुछ नहीं बचता। लेकिन यह जीवन नहीं है और पहचान इस बात से हो सकती है कि इस प्रतिपल जी नहीं रहे हैं, केवल मृत्यु से बचने की सुरक्षा और आयोजन कर रहे हैं। भोजन जुटा रहे हैं, मकान बना रहे हैं, यश पद प्रतिष्ठा, धन, संपत्ति इकट्ठी कर रहे हैं। कोई पूछे कि ये सब अंततः इसका मूल्य क्या है? अंततः इसका मूल्य है कि मैं मर न जाऊंगा। मैं असुरक्षित न छूट जाऊं। कल भी जी सकूं, परसों भी जी सकूं इसलिए इंतजाम कर रहा हूं। लेकिन इस सारी व्यवस्था के बाद आदमी आखिर मृत्यु में पहुंच जाता है।

एक छोटी-सी कहानी मुझे स्मरण आती है। बल्ख में बल्ख के बादशाह ने एक रात एक सपना देखा रात उसने सपने में देखा

कि कोई अंधेरी छाया, कोई काली छाया उसके कंधे पर हाथ रखे है। नींद में भी वह घबड़ा गया। उसने पूछा कि तुम कौन हो? उस काली छाया ने कहा कि मैं तुम्हारी मौत और आज सांझ तुम्हें लेने आती हूं। तुम ठीक जगह ठीक समय पर मुझे मिल जाना। सूरज डूबते ही डूबते मैं आने को हूं, ठीक जगह पर मुझे मिल जाना। यही खबर देने आई हूं। कि कहीं ऐसा न हो कि जहां मैं तुम्हें लेने आऊं, तुम वहां न मिलो।

उस सम्राट का मन था कि पूछ ले कि वह कौन-सी जगह है कि जहां मैं मिलूं, इसलिए कि वहां से बच जाऊं, बल्कि इसलिए कि वहां से बच जाऊं। लेकिन नींद टूट गई। घबराहट में और वह पूछ नहीं पाया मौत से कि मैं किस जग मिलूं। इसलिए नहीं कि मैं जाऊं, बल्कि इसलिए ताकि वहां से बच सकूं, उस जगह का पता चल जाए। लेकिन नींद टूट गई थी और मौत नहीं थी सामने। वह बहुत घबराया। आधी रात थी। उसने नगर में जो भी ज्ञानी थे, ज्योतिषी थे, पंडित थे, शास्त्रों को जानने वाले जीवन और मृत्यु के संबंध में बातें करते थे, उन सारे लोगों को आधी रात ही बुला लिया और उनसे कहा कि यह स्वप्न आया है, उसका क्या अर्थ है? क्या मैं आज सांझ मरने को हूं। अगर मरने को हूं, तो बचने का क्या इंतजाम है। कैसे बच सकता हूं। मौत से बचना जरूरी है। और ज्यादा देर नहीं है, थोड़ी ही देर में सुबह हो जाएगी और सूरज यात्रा शुरू कर देगा और फिर थोड़ी ही देर बाद सांझ हो जाएगी। वे पंडित अपने शास्त्र ले जाएगा। उन्होंने अपने शास्त्र खोले और वे विवेचन और व्याख्या में लग गए। लेकिन एक पंडित का विवेचन और व्याख्या दूसरे से मेल नहीं खाता, कभी-भी नहीं खाया पंडितों के विवेचन और व्याख्या है मैल, उसमें कोई संबंध कभी भी नहीं रहा। उन्होंने विवाद किया है। लेकिन आज तक वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे। सुबह होने लगी और विवाद इतना बढ़ गया कि वह सम्राट बोला—जब मैं जागा था, नींद से, तब मुझे सपना कुछ स्पष्ट भी था। तुम्हारी बातें सुनकर और भी अस्पष्ट हो गया है। मैं और भी भ्रम में पड़ गया हूं। जल्दी करो। उन पंडितों ने कहा जल्दी तो हम कर रहे हैं, लेकिन विवाद बढ़ता चलता गया। सूरज उठने लगा तो सम्राट के प्राण कंपने लगे। सांझ-सांझ करीब आने लगी। उसके एक बूढ़े नौकर ने कहा कि इनकी बातों का निष्कर्ष शायद ही कभी निकले। सांझ जल्दी हो जाएगी और अच्छा यह हो कि उनको विवाद करने दें। आपने पास जो तेज घोड़ा है, उसको लेकर जितनी दूर इस महल से निकल सकें, निकल जाएं। चूंकि जिस रात महल में यह सपना आया है, संभव है कि मौत इसी महल में आती हो, तो हट जाएं इस महल से दूर। यह बात ठीक भी मालूम पड़ी।

उस सम्राट ने अपने घोड़े पर सवारी की और वह भागा। जाते साथ समय उसे ख्याल भी न रहा उस पत्नी का, जिससे उसने अनेक बार कहा था कि तेरे बिना एक क्षण मैं जी भी नहीं सकता। उन मित्रों का कोई स्मरण न रहा, जिन्हें उनसे कहा था कि तुम ही मेरे जीवन हो, तुम ही मेरी खुशी हो, तुम ही मेरी-गीत हो, मौत सामने आती है, तो सारी बातें भूल जाती हैं। वह भागा और दिन भर भागता रहा। उस दिन न तो उसे प्यास लगी और न भूख। मौत सामने थी —कैसे भूख थी, कैसी प्यास और एक क्षण भी रुकना खतरनाक था। कौन जाने कितने निकट हो मौत महल के। इसलिए जितनी दूर निकल जाऊं उतना अच्छा। वह सांझ तक भागता रहा। बहुत तेज घोड़ा था उसके पास सैकड़ों मील दूर वह सांझ तक निकल गया, तो निश्चित हुआ। सूरज ढलता था। उसने एक बगीचे में अपना घोड़ा बांधा। वह घोड़ा बांध भी नहीं पाया था कि पीछे कंधे पर किसी का हाथ उसे मालूम पड़ा। लौटकर देखा तो घबड़ाया—वही काली छाया थी? उसने पूछा तुम, तुम कौन हो? मृत्यु ने कहा रात आई थी—फिर भी पहचाने नहीं! धन्यवाद तुम्हारे घोड़े को अगर इतना तेज घोड़ा तुम्हारे पास न होता तो आज बड़ी मुश्किल थी। इस जगह पहुंच जाना बहुत जरूरी था। मैं यहां प्रतीक्षा करती थी। और बहुत भयभीत थी कि पता नहीं तुम ठीक समय पर पहुंच पाओ कि न पहुंच पाओ, लेकिन धन्यवाद तुम्हारे घोड़े को, बहुत तेज घोड़ा है और ठीक समय पर ठीक जगह ले आया।

आदमी जीवन भर भागता है, उपाय करता है, व्यवस्था करता है, सुरक्षा करता है और आखिर में सारी व्यवस्था, सारी सुरक्षा मौत में जाकर खड़ा कर देती है। सोचता था जो मैं उपाय कर रहा हूं, उससे मौत से बचूंगा, मिटने से बचूंगा, न होने से बच जाऊंगा। लेकिन वे सारे उपाय, उसके सारे आयोजन उसे न होने में ही ले जाते हैं। हमने मौत की तरफ कदम उठाए, इसलिए चाहे हम तेज घोड़े पर चलते हों, चाहे सुस्त घोड़े पर चलते हों, चाहे गरीब का घोड़ा हो, चाहे अमीर का घोड़ा हो, सभी घोड़े ठीक जगह पर ठीक समय पर, पहुंचा देते हैं। हम शायद जो दिशा लें, वह दिशा ही मृत्यु की है।

दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं कि जीवन की दिशा को पहचान लेना अत्यंत आवश्यक है। पहली बात जन्म ही जीवन नहीं है, यह स्मरण होना चाहिए। दूसरी बात जीवन की दिशा क्या है? कहीं जिसे हम जीवन की दिशा समझते हैं, वह मृत्यु की ही दिशा तो नहीं। जीवन समझ कर जिसकी हम पूजा करते हैं, वह मृत्यु ही तो नहीं। जिस ओर हम दौड़ते हैं और श्रम करते हैं, वह हमें कहां पहुंचाता है। एक और छोटी सी कहानी से समझाने की कोशिश करूंगा।

एक जर्मन विचारक हेरिडेल पूरब की यात्रा को आया हुआ था। वह पूरब के मुल्कों में उन लोगों की तलाश में था, जिन्हें जीवन उपलब्ध हो गया हो। वर्षों भटकता रहा, लेकिन उसे वह आदमी दिखाई नहीं पड़ा, जिसे जीवन उपलब्ध हो गया हो। उसे संन्यासी मिले, उसे साधु मिले, लेकिन वे भी उसे मृत्यु की तरफ ही जाते हुए मालूम हुए। वे भी नहीं दिखाई पड़े। जिन्हें वह किरण, वह सूत्र मिल गया है, जो जीवन की तरफ ले जाने वाला है। फिर वह थक गया और वापस लौटने को था उन दिनों जापान में था और जिस दिन लौटना था—किसी ने कहा एक संन्यासी को मैं और जानता हूं। जाने के पहले उससे और मिल लें। इतने दिनों की खोज के बाद वह निराश हो गया था। फिर उसने सोचा कि क्यों एक मौका और है। एक मौका और खोजने का है। कई बार ऐसा होता है कि आदमी यात्रा के अंतिम चरण से वापस लौट आता है, कई बार ऐसा होता है कि एक हाथ और खोदा जाता और कुएं में पानी आ जाता। कौन जानता है यह आदमी, वही आदमी हो, जिसकी उसे खोज हो। उसने उस साधु के पास गया। उसे निमंत्रित किया भोजन के लिए उस जापान के छोटे नगर में—एक बड़े होटल में उस साधु को आमंत्रित कुछ और मित्रों को बुलाया। वे सात मंजिल मकान में लकड़ी के मकान में बैठकर बातें करते थे। भोजन करते थे। उस साधु से कुछ पूछा था। वह उत्तर देता था, फिर अचानक भूकंप आ गया। सारे मकान कंप गए। पास के मकान गिर गए, हाहाकार मच गया। फिर कौन वहां बैठता, भोजन के लिए, कौन वहां साधु को सुनने को रुकता। सारे लोग भागे। सात मंजिल मकान था, लकड़ी का हवा में कंप रहा था, पत्ते की तरह, जो किसी भी क्षण गिरता और प्राण जाते। लोग भागे, लेकिन कोई पच्चीस-तीस लोग थे संकरी सीढ़ियां थीं और भीड़ हो गई और लोग रुक गए। हेरिडेल भी भागा। लेकिन भीड़ थी, रास्ता नहीं था, सीढ़ियों पर उसे खयाल आया—मैं मेजबान हूं(होस्ट) हूं और मैं भागा जा रहा हूं। मेहमान का क्या हुआ—अतिथि कहां है, लौटकर उसने देखा जिस साधु को बुला लाए थे, वह अपनी जगह बैठा है, वह भागा नहीं है। उसके चेहरे पर भागने का कोई खयाल भी नहीं है। उसकी आंख जरूर बंद है और वह ऐसा भी नहीं मालूम होता जैसे कोई आदमी हो। इतना शांत मालूम होता है जैसे कोई मूर्ति हो।

हेरिडेल के मन में हुआ कि मैं भाग जाऊं मेहमान का खतरे में छोड़कर यह तो शिष्टता न होगी, रुक जाना चाहिए। फिर यह भी खयाल आया कि जो उसका होगा वही मेरा भी होगा। किसी तरह अपने को रोक कर वह भी साधु की कुर्सी पर बैठ गया। हाथ-पैर कंपते हैं, उसके प्राण डरे हुए हैं। खतरा है, मौत का। लेकिन दस पांच क्षण और—और भूकंप चला गया। उस साधु ने आंख खोली और भूकंप के जाने से बात टूट गई थी, जहां से, वहीं से बात शुरू कर दी।

हेरिडेल तो हैरान हुआ जैसे कि भूकंप आया ही न हो। उसने उस साधु से कहा—हम भूल गए थे कि क्या बात होती थी भूकंप आने के पहले। इतनी बड़ी घटना घट गई, इतना बड़ा विनाश हो गया है, हम इतने घबड़ा गए हैं कि मुझे याद भी नहीं कि हमने क्या पूछा था। आप छोड़ें उस बात को अब अब तो मुझे दूसरी ही बात पूछनी है। भूकंप आया, आप भागे नहीं? भूकंप का क्या हुआ? उस साधु ने कहा, भागा तो मैं भी, भागे तुम भी, लेकिन तुम बाहर की तरफ भागे और मैं भीतर की तरफ भागा। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारा भागना बिलकुल व्यर्थ था, क्योंकि तुम भाग रहे थे वहां भी भूकंप था। भूकंप से ही भूकंप में भागने का क्या अर्थ है? क्या प्रयोजन, क्या अभिप्राय है? शायद तुम पागलपन में भाग रहे थे, क्योंकि भूकंप से भूकंप में भागने से कौन-सा अर्थ है? शायद तुम्हें कुछ सूझ नहीं पड़ता था। इसलिए भाग रहे थे। मैं उस जगह भागा जहां कोई मुकाम कभी नहीं पहुंचता है। मैं भीतर की तरफ भागा, मैं उस जगह भागा जहां मृत्यु की कोई छाया कभी नहीं पहुंचती। मैं जीवन की तरफ भागा। अगर हम जीवन में निरंतर बाहर की तरफ भाग रहे हैं तो स्मरण रहे कि जीवन की कला को कभी-भी नहीं सीखा जा सकता। बाहर मृत्यु है, बाहर भूकंप है, भीतर जरूर चेतना है, अंतर्गृह है, वहां जीवन स्पंदन है। यहां जहां से जीवन का बीज फूटता और अंकुरित होता है, वहां लौटें तो ही जीवन को जाना और जीया जा सकता है।

वृक्ष को हम देखते हैं, आकाश में फैला हुआ हवाओं में उसके फूलों की गंध होती है। सूरज की किरणों में उसके पत्ते नाचते हैं, लेकिन जड़ें जहां वृक्ष का जीवन है, पृथ्वी के नीचे वे जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं। वे अदृश्य में वृक्ष दिखाई पड़ता है, वे दिखाई नहीं पड़तीं। जो भी हमें दिखाई पड़ता है, वहां जीवन की जड़ें नहीं हैं, जो हमें नहीं दिखाई पड़ता है और अंतर्गृह में छिपा है, दूर भूमि के भीतर, वहां जीवन की जड़ें हैं। दो मार्ग है या तो मनुष्य की चेतना बाहर-बाहर, बाहर की यात्रा को निकलती है या तो अंदर की यात्रा को संलग्न होती हो। बाहर की यात्रा पर मृत्यु के अतिरिक्त अंतिम निष्पत्ति और कुछ भी नहीं। भीतर की यात्रा पर जीवन और गहरा जीवन और परम जीवन होता चला जाता है। और वहीं जहां मेरा होना है, जहां आपका होना है, जहां हमारा वास्तविक होना है, वहीं जीवन की परिपूर्णता का अनुभव उपलब्ध होता है। वह अनुभव ही परमात्मा है और जिसे एक बार भीतर दिखाई पड़ जाए उसे फिर तत्क्षण बाहर भी दिखाई पड़ने लगता है।

जिसे भीतर न दिखाई पड़े, जीवन उसे बाहर भी कभी दिखाई नहीं पड़ सकता। जो अपने भीतर ही जीवन को जानने में असमर्थ हुआ है, वह बाहर जीवन को कैसे खोज पाएगा, जो निकटतम को भी पहचानने में हार गया है, वह जो दूर है, उसे कैसे जान पाएगा। जो अत्यंत पास है, पास से भी पास है, जो मैं ही हूं, जो वहां भी नहीं जान सका, वह दूर में, अन्य में, भीड़ में, दूसरे कैसे खोज पाएगा। जीवन का पहला अनुभव आंतरिक है और एक बार अंतस्तः में उसके दर्शन हो जाएंगे तो सारे जगत में मृत्यु विलीन हो जाती है। मृत्यु ही हमारा न जानना, वह है हमारा अज्ञान। जीवन है हमारा ज्ञान। वह है हमारा जानना और हम अपने को ही नहीं जानते तो जीवन की दिशा क्या है...सिकंदर हिंदुस्तान की तरफ आता था, रास्ते में वह एक फकीर डायोजनीज से मिलने गया। डायोजनीज़ लेटा था धूप में । सर्दी के दिन थे और धूप का आनंद ले रहा था नग्न। सिकंदर ने उसे लेटे देखकर कहा इतने खुश मालूम होते हो डायोजनीज़ और तुम्हारे पास जहां तक मैं देखता हूं, मैं तुमसे कह सकता हूं—तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। हालांकि तुम्हारे पास बहुत-कुछ दिखाई पड़ता है। मेरे पास जीवन है और तुम्हारे पास केवल मृत्यु से सुरक्षा की व्यवस्था की जो कुछ भी सुरक्षित नहीं कर पाएगा, क्योंकि जीवन का उसे कोई पता ही नहीं, जिसे सुरक्षित करना है, जैसे कोई अंधेरे से बचने का उपाय करे, और दिये का उसे पता न हो, क्या करेगा वह आदमी? अंधेरे से बचने के लिए। अंधेरे से बचने के लिए जो किया जा सकता है, सिवाय इसके लिए कि हम कल्पना कर लें कि अंधेरा ही प्रकाश है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं किया जा सकता और यही हमने किया है कि हम मृत्यु को ही जीवन कहने लगे हैं, जबकि हमें जीवन का कोई पता नहीं और मृत्यु से बचना अंधेरे से बचने को कोई भी उपाय नहीं होगा, सिवाय इसके कि प्रकाश आपके पास हो। प्रकाश है तो अंधेरा नहीं है। प्रकाश नहीं है तो अंधेरा है। प्रकाश का अभाव ही अंधेरा है। जीवन का हमें कोई पता नहीं, इसीलिए मृत्यु है। जीवन का हमें पता हो तो फिर मृत्यु नहीं, मृत्यु जीवन के अनुभव का अभाव है। मृत्यु की कोई सत्ता नहीं, अंधेरे की कोई सत्ता नहीं ।

सिकंदर ने कहा, तुम्हारी बात तो ठीक मालूम होती है। लेकिन अभी तो मैं विश्व की विजय को निकला हूं। डायोजनीस हंसने लगा, जो अपने को भी नहीं जीता पाया, वह विश्व की विजय को निकल पड़ता है, जो अपने को भी नहीं जीत पाया, वह जगत को जीतने निकल पड़ा है। विक्षिप्त हो गए हैं आप। शायद सचाई यह है कि इस बात का हमें पता न चले कि मैं अपने के नहीं जीत पाया, इसलिए हम जगत को जीतने में संलग्न हो जाते हैं। जगत को जीतने में तो इस बात को भूले रहते हैं कि मैं अपने को भी नहीं जीत पाया हूं, लेकिन विस्मृति से कुछ भी नहीं होता। केवल जीवन अपव्यय होता है। सिकंदर ने कहा ठीक कहते हो, शायद तुम लेकिन अब तो मैं आधी यात्रा पर निकल आया, अब कैसे बीच से लौट सकता हूं।

डायोजनीज़ कहने लगा, पता है बाहर की यात्रा कभी भी पूरी नहीं होती, हमेशा अधूरी रहती है। अब तक कौन बाहर की यात्रा पूरी कर पाया है और सच यही हुआ—सिकंदर वापस नहीं लौट पाया अपने घर तक, बीच में ही मर गया। अभी दुनिया जीतने को शेष थी और वह अशेष हो गया, वह समाप्त हो गया। उसके मर जाने के बाद एक बड़ी मीठी कथा सारे यूनान में प्रचलित हो गई, जो कि संयोग की बात, जिस दिन सिकंदर मरा, उस दिन डायोजनीज़ भी मरा। किसी कवि ने यह कहानी प्रचलित कर दी होगी यूनान में कि दोनों मरने के बाद वैतरणी पार करते वक्त फिर से मिल गए थे एक तो साथ मरे हों। सिकंदर थोड़ी देर पहले मरा था, वह आगे था। डोयोजनीज़ थोड़ी देर बाद मरा था, वह पीछे था। सिकंदर ने पीछे आवाज सुनी किसी हंसी की और वह हंसी पहचानी हुई मालूम पड़ी। वह हंसी परिचित थी, वह हंसी डायोजनीज़ की थी।

वैसा तो दुनिया में कोई भी आदमी नहीं हंस सकता था। वैसा तो वही हंस सकता है, जो जीवन को अनुभव करता हो, मृत्यु से घिरा हुआ आदमी हंस कैसे सकता है उसका हंसना ही भुलावा है, धोखा है, वंचना है। वैतरणी पर वह गूंजती हुई हंसी की आवाज उसने लौट कर पीछे देखा, वह नंगा फकीर डायोजनीज़ आ रहा है। हंस क्यों रहा है सिकंदर बहुत हतप्रभ हुआ और उसे खयाल आया कि डायोजनीज़ ने कहा था कि यह यात्रा अधूरी रह जाएगी। और तुम समाप्त हो जाओगे, अपने को जीत लो, दुनिया को जीतने की यात्रा कभी पूरी नहीं होती है, और आज यह बात सच हो गई और वह शायद इसलिए हंस रहा है लेकिन सिकंदर ने हिम्मत जुटाई, वह सम्राट था, एक फकीर के सामने हार जाएगा, उसने भी हंसने की कोशिश की। लेकिन हंसी बड़ी फीकी थी। हिम्मत बढ़ाने के लिए उसने जोर से चिल्लाकर डायोजनीज़ को कहा, बड़ा खुश हूं तुमसे मिलकर।

शायद ही वैतरणी पर ऐसी घटना कभी घटी हो। एक बादशाह और एक भिखारी का मिलना हो रहा है, शायद ही कभी ऐसा हुआ हो वैतरणी पर इतना बड़ा बादशाह और तुम जैसा नंगा भिखारी। यह अपने में हिम्मत जुटाने के लिए उसने कहा था। लेकिन डायोजनीस और-और जोर से हंसने लगा। उसने कहा, तुम ठीक कहते हो—कहने में कि कौन बादशाह है, कौन भिखारी है। बादशाह पीछे है और भिखारी आगे है।

सिकंदर आगे था, डायोजनीज़ कहने लगा, तुम ठीक कहते हो। एक बादशाह का एक भिखारी से मिलना, लेकिन जरा भूल करते हो, कौन बादशाह है, कौन भिखारी। मैं सब कुछ जीत कर लौट रहा हूं। क्योंकि मैंने जीवन को जाना है और तुम सब कुछ हार कर लौट रहे हो, क्योंकि तुमने जीवन के अतिरिक्त जो भी जीता जाता है, वह मृत्यु में विलीन हो जाता है और समाप्त हो जाता है। जीवन की विजय ही अकेली विजय है और जीवन की दिशा अंतरस्थ की, भीतर की दिशा है। और एक बार भीतर उदघाटन हो जाए जीवन का तो फिर सब तरफ उसके पर्दे उठ जाते हैं। सब दिखाई पड़ता है, वह सब जगह मौजूद है—फूल में भी, पत्थर में भी, चांद में भी, तारे में भी, मिट्टी में भी, कण-कण में वह जीवन है। फिर उसका नृत्य दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा, लेकिन पहले अपने में खोज लेना जरूरी है।

एक दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं—जीवन की दिशा क्या है? जीवन की दिशा अंतरस्थ की दिशा है और हमारा मन चौबीस घंटे बाहर और बाहर है, शायद ही कभी हम भीतर हैं। सच तो यह है कि जब तक मन काम करता है, हम बाहर ही होते हैं। जब मन कान नहीं करता तभी हम भीतर होते हैं। जब मन क्रिया में संलग्न होता है तब तक हम बाहर होते हैं, जब तक मन सोचता है तब तक हम बाहर होते हैं, जब तक मन कुछ भी करता है, तब तक हम बाहर होते हैं। मन की सारी क्रिया बाहर की यात्रा है, मन की अक्रिया भीतर की यात्रा है।

यह तीसरा और अंतिम आपसे कहना चाहता हूं कि मन को जानना है तो मन की अक्रिया का सूत्र जान लेना जरूरी है। मन की क्रिया बाहर की यात्रा है और मन की अक्रिया भीतर की यात्रा, वह आत्मा की, परमात्मा की, प्राणों की, प्राण की यात्रा है, वह प्रभु का द्वार खोलती है, मन कैसे शांत और शून्य हो जाए, मन कैसे मौन हो जाए, मन कैसे साइलेंट हो जाए, मन कैसे घोर चुप्पी में प्रविष्ट हो जाए, वहां से जीवन द्वार खुलता है। शब्द बाहर ले जाते हैं, विचार बाहर ले जाते हैं, मौन और शून्य भीतर ले जाता है। लेकिन कैसे? विचार के साथ सहयोग बाहर जाने की व्यवस्था है। विचार से मित्रता छोड़ें। विचार की प्रक्रिया से विचार के प्रभाव में डूबना छोड़ें। किनारे पर खड़े होने की कला सीखें, यही जीवन की कला है—तटस्थ खड़े होने की कला। रास्ता चल रहा है और एक आदमी किनारे पर खड़े होकर रास्ते को देख रहा है। गंगा बह रही है, राजघाट पर खड़े होकर बहती गंगा को आप देख रहे हैं, मन की धारा बह रही है और किनारे खड़े होकर चुपचाप उसकी धारा को आप देख रहे हैं। यह देखना जितना गहरा, जितना सहज और जितना विशाल होता चला जाएगा, उतना ही यह अनुभव आएगा कि जितनी गहराई से, जितनी प्रगाढ़ता से मन की धारा देखी जाती है, उतनी ही तीव्रता से मन की धारा शून्य और शांत होती है। जिस दिन मन शांत है उसी दिन जीवन का द्वार खुल जाता है। जीवन क्या है? कहना कठिन है। जीवन कैसा है बताना असंभव है। जीवन को तो जीकर ही जाना जा सकता है। लेकिन हम कैसे पहुंच सकते हैं? जीवन के मंदिर तक, मन जहां निस्पंद है, मन जहां शांत है, मन जहां शून्य है, वहां, उस मंदिर का द्वारा खुलता है। तो अंतिम बात आपसे कहना चाहता हूं वह यह कि मन की धारा के तटस्थ दर्शन बनिए। मौन मन की धारा के खड़े किनारे, खड़े होने की बस केवल खड़े

होने की, चुपचाप मन को देखते रहने की सामर्थ्य को विकसित करिए। यह सामर्थ्य जितनी विकसित होगी, मन के साक्षी बनने की उतनी ही जीवन में आप प्रविष्ट होते चले जाएंगे। और जीवन को जीकर ही जाना जा सकता है। प्रेम को करके ही जाना जा सकता है। जीवन का स्वाद भी जीवन में डूबने और कूद पड़ने से उपलब्ध होता है। अंत में फिर से दुहरा देता हूं।
पहली बात जन्म को जीवन नहीं मानना है, वही भूल है, जो सारे जीवन को नष्ट कर देती है। जीवन की दिशा खोजनी है। दूसरा सूत्र बाहर बाहर जीवन की दिशा नहीं है। अंतरस्थ में छिपी हैं जड़ें जीवन की—वहां भीतर चलना है और खोजना है। और तीसरी बात कैसे पहुंचेंगे उस भीतर के जगत में, जहां भूकंप नहीं पहुंचते, जहां मृत्यु नहीं पहुंचती, वहां आप कैसे पहुंचेंगे। आप वहां हैं, लेकिन मन की धारा में बहने के कारण इस बात का अनुभव नहीं हो पाता कि मैं कहां हूं? तो तीसरी बात, मन की धारा को निस्पंद निष्क्रिय मन की धारा को शून्य और शांत करना है। वह कैसे शांत और शून्य होती है, वह शांत होती है तटस्थ दर्शन से, वह शांत होती है मौन साक्षी के भाव से और जब वह शांत हो जाती है, तो सब मिल जाता है, जिसे पाने के लिए प्रत्येक मनुष्य पैदा हुआ है।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

इसमें पत्थर का कोई हाथ न था। यह पत्थर का स्वभाव है। यह कांच का स्वभाव है। ये दोनों स्वभावतः टकराएं तो कांच चूर-चूर हो जाता है। इट जस्ट हेपंस। यह कोई करना नहीं है। कोई पत्थर उपाय नहीं करता कांच को चूर-चूर करने में। कांच बस चूर-चूर हो जाता है। यह कांच और पत्थर के स्वभाव के मिलने का सहज परिणाम है। इसमें पत्थर का कहीं भी कोई हाथ नहीं है। लेकिन कांच के टुकड़े क्या कहते और क्या इंकार करते हो गए थे चूर-चूर। इसलिए मान लेना पड़ा कि पत्थर ठीक ही कहता है। नीचे पड़े हुए पत्थरों की आंखों में और कांच के टुकड़ों में यह बात देखकर कि जो मैंने कहा है, वह स्वीकृत हो गया। पत्थर को स्वीकृति भी मिल गई। वह प्रमाणीभूत हो गया कि मैं हूं। फिर वह गिरा नीचे कालीन पर जहां और बहुमूल्य कालीन बिछे थे। गिरते ही उसने राहत की सांस ली और कहा मालूम होता है शायद इस भवन के लोग बड़े शिष्ट और संस्कारी हैं। मेरे आने के पहले ही ज्ञात होता है कि खबर मिल गई। कालीन इत्यादि बिछा रखे हैं। पता भी न था लेकिन उस पत्थर ने जाना कि मेरे लिए कालीन बिछाने का आयोजन किया गया है। फिर भी बहुत कम उसने जाना। वह चाहता तो यह भी जान सकता था कि महल मेरे लिए निर्मित किए गए हैं, फिर भी कम था। वह यह भी मान सकता था कि महल में रहने वालों को सिर्फ महल की सुरक्षा के लिए छोड़ा गया है, ताकि जब मैं आऊं तो वे मेरे लिए व्यवस्था कर सकें। और कौन इनकार करता? और कोई इंकार करता भी तो पत्थर कहीं मानने को कभी राजी होते हैं?
महल का पहरेदार भागा। आवाज है कांच टूटा है पत्थर आया है। उसने पत्थर को उठाया हाथ में फेंक देने के लिए। लेकिन पत्थर ने कहा, धन्यवाद। हजार-हजार धन्यवाद। मालूम होता है भवन का मालिक हाथ में लेकर सम्मान प्रकट कर रहा है। कोई गलती तो नहीं कर रहा था वह पत्थर। आदमी क्या करता है? और आदमी क्या समझता है? उस पत्थर को फेंक दिया गया। और जब फेंक दिया गया उस पत्थर को, तो उसने यह नहीं समझा कि मैं फेंका जा रहा हूं, कौन ऐसे समझने की भूल करता है? उस पत्थर ने कहा संभालो अपने महल होंगे तुम्हारे महल बड़े, लेकिन कहां वह मजा? कहां वह आजादी पत्थरों के ढेर पर रहने का। मैं अपने घर वापस लौटता हूं।
मुझे मित्रों की याद आती है होमसिकनेस मालूम होती है। जब दिल्ली से कोई साथी लौटता है तो यही तो कहता है कि बहुत याद आती थी आप सब की। इसलिए वापस चला आया। दिल्ली से फेंक दिया गया हूं। नहीं-नहीं होमसिकनेस मालूम होती थी। आप सबकी बहुत याद आती थी। होगी दिल्ली अच्छी। लेकिन कहां वह मजे काशी के? कहां मित्रों के साथ होना? कहां पत्थर का ढेर? और पत्थर का ढेर का मजा? उस पत्थर ने भी यही कहा कि कोई अड़चन है आपको? उस पर हंसते हैं आप। पूछना यह है कि अपने पर कब हंसेंगे। और उस पत्थर की कहानी आपकी मेरी, आदमी की कहानी से कुछ भिन्न है? अज्ञात शक्ति फेंक देती है हमें जीवन में । और हम कहते हैं मेरा जन्म। जैसे जन्म भी हमने लिया हो। जैसे जन्म में

भी हमारा कोई कर्तव्य हो । जन्म के भी हम कर्ता हों। मेरा जन्म जैसे कोई जन्म से पहले किसी ने पूछा हो कि वहां जाना चाहते हैं, जन्म लेना चाहते हैं कि नहीं? न कोई पूछता? न कोई निर्णय है? मेरा कोई संबंध कोई अज्ञात हाथ जैसे सागर में लहरें उठा जाता है, कोई अज्ञात हाथ जैसे वृक्ष के पत्तों को हिलाता है, वैसे कोई अज्ञात जीवन की धारा मुझे फेंक देती है। और जब मैं फेंक दिया जाता हूं, तब मुझे पता चलता है कि मैं हूं। लेकिन मैं कहता हूं कि मेरा जन्म। और कोई एतराज नहीं करता। क्योंकि सभी लोग एक ही कुएं का पानी पीए हुए हैं। कोई नहीं कहता कि तुम्हारा जन्म कैसे है। कहता हूं, मेरा बचपन, मेरी जवानी, मेरा बुढ़ापा। जैसे मेरे कोई चेष्टा हो इस सबमें। बच्चे वैसे ही जवान होते हैं जैसे बीच से अंकुर फूटता है। बच्चों से जवानी वैसे ही निकलती है जैसे वृक्ष में पत्ते आते हैं। फूल आते हैं। ये घटनाएं हो रही हैं। आप कर नहीं रहे हैं। मत कहिए—मेरी जवानी। लेकिन यह तो दूर की बात है। हम तो यहां तक कहते हैं कि मैं श्वास ले रहा हूं। अदभुत है आदमी भी? अगर आदमी श्वास ले रहा होता तब किसी आदमी की, मौत असंभव थी। मौत आ जाती द्वार पर बाहर बैठकर प्रतीक्षा करती, आप श्वास लिए ही चले जाते। क्या करती बेचारी लौट जाती। लेकिन हम जानते हैं श्वास हम ले नहीं रहे हैं, श्वास चल रही है। लेना हमारे हाथ में नहीं। श्वास बाहर गई और नहीं लौटी तो बस नहीं लौटी। हमारे हाथ में नहीं। सच तो यह है कि श्वास बाहर गई और नहीं लौटी तो हम भी नहीं हैं। उसी के साथ हम भी गए बाहर। और कहां गए? और किसी अज्ञात में खो गए ? जिसका हमें कुछ पता नहीं। लेकिन हम कहते हैं कि मैं श्वास ले रहा हूं। जीवन को हमने उसी भ्रम पर खड़ा किया है जिस भ्रम पर उस पत्थर ने यात्रा की थी। और उसी भ्रम से अहंकार पैदा होता है। कि मैं हूं, मैं कर रहा हूं मैं जी रहा हूं। इस सबका इकट्ठा, पूंजीभूत जब परिणाम होता है तो लगता है मैं हूं। अहंकार से मुक्ति की खोज में अहंकार के संगठन की प्रक्रिया को जान लेना जरूरी है। इसके जानते ही, इसे पहचानते ही अहंकार की छाया विलीन होने लगती है। उसके संगठित होने की बुनियाद खो जाती है। उसके संगठन का मूल सूत्र मूल कीमिया नष्ट हो जाती है। हम नहीं जानते हैं तो उसके संग्रह का कोई कारण नहीं। इसलिए न तो अहंकार छोड़ना है, न पकड़ना है, न भरना है, न खाली करना है। अहंकार जानना है। अहंकार पहचानना है। अहंकार के बोध से जीवन को भरना है। यह मैं दूसरा सूत्र आपसे कह रहा हूं। अहंकार जानने से विसर्जित होता है। अहंकार का ज्ञान अहंकार की मृत्यु है। वह मरा हुआ ही है। उसमें कभी जीवन है ही नहीं, उस मृत्यु को हम पकड़े हुए हैं। इसलिए हम मरते हैं, जीते हैं, मालूम होते हैं। अहंकार गया तो मौत एक झूठ बन जाती है, असत्य हो जाती है। फिर जो ज्ञात होता है वह अमृत है। फिर जो ज्ञात होता है वह जीवन है। लेकिन कैसे हम इस अहंकार के प्रति परिपूर्ण रूप से जाग सकते हैं। उसकी चर्चा मैं कल आने वाले तीसरे सूत्र में करने वाला हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

डी. ए. वी. कॉलेज.

14 अगस्त, सुबह 10 बजे

मेरे प्रिय आत्मन्

जीवन तो सभी को मिलता है। लेकिन फिर भी जीवित बहुत थोड़े लोगों को कहा जा सकता है। अधिक लोग ऐसे ही जीते हैं कि जैसे वे जीते ही न हों। जीवन का न कोई अर्थ, ऐसे जीते हैं, जैसे मजबूरी में एक व्यर्थ बोझ उठाना पड़ रहा हो। ऐसे जीने को जीना कहना शब्दों के साथ खिलवाड़ करना है। जीने की संभावना सबको मिलती है लेकिन उस संभावना को वास्तविक रूप से बहुत थोड़े लोग जान पाते हैं। और जीवन के साथ हम जो करते हैं, अवसर तो जैसा मैं एक कहानी कहता हूं—एक सम्राट था और उसके तीन बेटे थे। वह चिंतित था कि इन तीनों में से किसको साम्राज्य सौंपू। कौन है इस योग्य जो साम्राज्य का मालिक बन सकेगा। तीनों एक जैसे थे। कैसे जानूं कि कौन योग्य है। उसने एक फकीर को पूछा। फकीर ने रास्ता बताया। और सम्राट ने संध्या को तीनों लड़कों को बुलाया और कहा कि एक हजार रुपए लो और बस कल तक एक हजार में जो भी सामान ला सको, लाकर महल को भर दो। बस केवल हजार रुपये खर्च करने हैं और महल अधिक से अधिक भर जाए। ऐसा आयोजन करें। कल संध्या मैं आऊंगा और तुम्हारी परीक्षा इसी से हो जाएगी कि तुममें से साम्राज्य का मालिक कौन बनेगा। जो सफल होगा वही सम्राट बनेगा। इसलिए सोचकर, समझकर, इस कार्य को पूरा करो। वे सब बड़े सोच में

पड़ गए कि इतने रुपये में क्या हो सकता है। महल बड़ा था। हजार रुपये में क्या हो सकता है। शायद लाख रुपये होते तो कुछ सार्थक लायक हो भी सकता था। हजार रुपये तो उसके सजाने में ही खर्च हो जाएंगे। पहले लड़के ने बहुत चिंता की और रात भर सो न सका। दूसरे दिन भी बड़ा बेचैन था और दिन ढलता जा रहा था सांझ करीब बाती जाती थी। फिर क्या होगा? आखिर में वह इतना घबराया, इतना चिंतित और परेशान हो गया कि सोचा जाऊं मधुशाला और थोड़ी शराब पी लूं—तो शायद थोड़ी राहत मिले, चिंता से, और तब शायद कुछ कर सकूं। वह मधुशाला गया। उसने पहला प्याला तो स्वयं पिया और सोचा कि एक प्याली पीकर लौट आऊंगा। लेकिन एक प्याली पीकर कोई कभी उस द्वार से आज तक लौट न सका। पहली प्याली आदमी पीता है और फिर दूसरी प्याली जाम और फिर इसी तरह तीसरी प्याली...और फिर प्यालियों का जो सिलसिला चलता है, उसका उसको पता भी नहीं चलता कि कितनी शराब पीयी। उसने खूब शराब पी और बेहोश हो गया। बेहोश पड़ा देखकर उसे कुछ लोग उठा कर ले आए और महल की सीढ़ियों पर उसे छोड़ गए। जब सम्राट संध्या आया तो महल अंधकार से भरा था। द्वार पर ताले पड़े थे। और राजकुमार बेहोश सीढ़ियों पर पड़ा था। सम्राट ने उसे जगाया और उसने कहा कैसे पड़े हो यहां? उसने कहा कैसे रोकें, कहां से रोकें, तुम कौन हो?

उसके पिता ने कहा कि तुम पागल हो गए हो। मुझे भी स्मरण नहीं कर रहा कि मैं कौन हूं? मैं तेरा पिता हूं। वह हंसने लगा और कहने लगा—कैसा पिता, कौन पिता, मुझे कुछ भी याद नहीं पड़ता। फिर उसने आंखें बंद कर लीं और बेहोश हो गया। अधिक लोग इस मृत्यु की भांति जीवन जीते हैं और जीवन का अंतिम क्षण उनका अंधकार से भरा होता है और द्वार पर ताले पड़े होते हैं और अंदर अंधकार होता है। मौत अधिकतर लोगों को इस हालत में ही पाती है।

दूसरा राजकुमार भी बहुत चिंतित हुआ। बहुत सोचा और अंत में एक ही बात उसके खयाल में आ सकी कि हजार रुपये में ही महल को भरना है तो सिवाय कूड़े और कचरे के और कैसे महल भरा जा सकता था, तो उसने गांव से कचरा, जो गांव के बाहर फेंका जाता था, कचरे के मालिकों से प्रार्थना की कि सब कचरा महल में डाल दें। शाम होते-होते महल कचरे, कूड़े बदबू और गंदगी से भर गया। क्योंकि सामर्थ्य थी कम, शक्ति थी कम, रुपये की सीमा थी, इसलिए उतने रुपये में सिर्फ कचरा ही भरा जा सकता था। शाम तक महल कचरे की बदबू और गंदगी से भर गया। क्योंकि कचरा ही फेंका गया था। अतः शाम तक वह महल इतने दुगध से भर गया कि रास्ते से गुजरना मुश्किल हो गया था। जो कचरे से भरा गया हो, उसमें दुगध ही तो उठेगी। कचरे से कभी सुगंध नहीं उठ सकती। सम्राट महल के द्वार से गुजरा तो नाक दुगध से भर गई और उसकी हिम्मत ही नहीं पड़ी द्वार को खोलने की। बेटा ने कहा कि हमने उतने रुपये में पूरा महल भर दिया है। कचरे से कोना-कोना भरा हुआ है, इसलिए मेरी विजय निश्चित ही है। इतना कचरा! दुगध, बदबू। राजकुमार ने कहा, महल भरने का था। सवाल यह कहां था किससे? महल भर दिया। जीवन को अधिक लोग उस कचरे से, कूड़े से भरे हुए जीते हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि जीवन भरने का सवाल था तो भर दिया जीवन। फिर उनका जीवन एक दिन यात्रा बनता है जिसको वे स्वयं जीते हैं और उनके आसपास जो हैं वे भी वैसे ही जीते हैं। हम एक दूसरे को दुख इसीलिए दे पाते हैं क्योंकि जीवन में इतना कचरा है कि सिवाय कचरा और कूड़े और दुगध के और कुछ होता ही नहीं। जिसका हाथ पकड़ते हैं, और जिसका साथ पकड़ते हैं, उसका जीवन दुख भरने का संबंध बनता है। पति-पत्नी का जीवन दुख से भर देता है। पत्नी पति का, और पिता बेटा का जीवन दुख से भर देता है और बेटा पिता का जीवन दुख से भर देते हैं। इसी तरह एक मित्र पड़ोसी, राष्ट्र, एक जाति दूसरे जाति का जीवन दुख से भर देते हैं और हम सब एक ही काम में संलग्न होते हैं। कि एक दूसरे का जीवन को दुख से भर देते हैं। यह जो हमारे भीतर पड़ा हुआ है, वह है कचरा और गंदगी। तो कैसे संभव है कि इस गंदगी से प्रेम की भावना पैदा हो सकती है कि सुगंध के फूल खिल सकें और गीत संगीत पैदा हो। और जो पैदा होता है वह वही हो सकता है जो मेरे भीतर है। लेकिन कोई स्वप्न में भी इसे नहीं देखता। सोचता और एक दूसरे की तरफ देखता है और सोचता है कि दूसरे लोग दुख पैदा कर रहे हैं। और हरेक यही सोचता है कि दुख पैदा कर रहा है। कौन दुख पैदा कर रहा है—प्रत्येक आदमी अपनी अनंत धारणा को जन्म देता है। क्योंकि जो जीवन है, वस्तुतः वह वही हो सकता है जो उसके भीतर है। कुछ दूसरे लोग इस दूसरे राजकुमार की तरह से जीवन व्यर्थ करते रहते हैं। कोई धन से भर लेता है जीवन को, और कोई यज्ञ से। और धन से भरना कचरे से भरना है, यश से भरना कचरे से भरना है। क्योंकि धन से जो भी अपने को

भरेगा तो ख्याल किया जाए कि जितना ही धन इकट्ठा किया जाएगा, उसके चारों तरफ उतना ही दुख की अंध धारणाएं उसके सामने छा जाएंगी। धन के आसपास कोई दुर्गुण उसको नहीं दिखाई देंगे। इसलिए मैं कहता हूं कि धन कचरा है। अगर धन सचमुच धन होता तो उसके आसपास से सुगंध पैदा होती। लेकिन धन के आसपास से दुग्ध फैलती है। एक आदमी बड़ा होने लगता है तो पड़ोस के लोग ईर्ष्या करने लगते हैं। एक आदमी धन के ऊपर बैठता है और अधिकतम आदमी की जिंदगी मृत्यु के ऊपर बैठनी शुरू हो जाती है। इसलिए धन कचरा ही होगा निश्चित, क्योंकि उससे कोई सुखी नहीं हो सकता। एक आदमी यश और पद कुछ भी हो, और जब वह आदमी यश और पद की यात्रा में संलग्न होता है तो न मालूम कितने लोगों के कंधों की सीढ़ियों उसे बनानी पड़ती हैं। और न मालूम कितने लोगों की उसे गर्दनें काटनी पड़ती हैं। बिना हिंसा के पद और यश की यात्रा कभी संभव ही नहीं है। दूसरे मनुष्यों के साथ दुर्व्यवहार किए बिना कोई किसी यात्रा के पहुंच नहीं सकता है। जीसस क्राइस्ट कहते हैं—धन्य हैं वे लोग जो अंतिम घंटों तक में समर्थ होते हैं। बड़ी अजीब बात हुई। धन्य हैं वे लोग जो अंतिम खड़े हुए। लेकिन यश का और पद का यात्री कहता कि प्रथम खड़े हुए बिना मुझे चैन नहीं। जो अंतिम खड़ा होता है, वह जीवन को ईर्ष्या, द्वेष और घृणा से नहीं डरता है। यहां तक कि उसमें खड़े होने में जो प्रतिस्पर्धा है, उससे मुक्त हो जाता है। लेकिन जो प्रथम होने की स्वांग से भरता है उसकी सारी आकांक्षाएं हिंसा में ले जाती हैं। और महत्वाकांक्षा में कोई अतिरिक्त अहिंसा नहीं है, कोई एंबीशन नहीं, एकमात्र हिंसा है। और जितना महत्वाकांक्षी व्यक्ति होगा उतना ज्यादा जीवन दुग्ध से भरा हुआ होगा। इसलिए मैं कहता हूं कि पद और यश की यात्रा कचरे और कूड़े से भरने की जीवन की यात्रा है। और अधिक लोग इस जीवन को कचरे से भरते हैं, इसीलिए जो जगत इतना दुखी है, इसीलिए तो जीवन इतना पीड़ित है, इसीलिए तो एक-एक आदमी उदास और निराश है। लेकिन हमें यह याद भी नहीं है कि हमने कब से यह यात्राएं शुरू कर दी हैं।

पहले दिन एक छोटा-सा बच्चा स्कूल में भर्ती होता है तो मां-बाप, शिक्षक, पड़ोसी सब उसके पीछे पड़ जाते हैं कि पहला आना जरूरी है। और शायद हमें पता नहीं है कि हम उसे जहर देते हैं और उसके जीवन को सारे कीचड़ से भरने की दौड़ करते हैं। जब वह प्रसंग खड़ा हो जाएगा उसके साथ, तो यह मत सोचो कि मुझे जो खुशी है कि वह इस बात की खुशी है कि वह पहला आ गया है, वह भ्रम है कि उसने उनतीस लड़कों को पीछे छोड़ दिया है। अगर एक क्लास में एक ही लड़का प्रथम आ जाए तो किस मां, बाप को खुशी नहीं होगी, और तीन हजार में हो जाए तो खुशी और बढ़ जाएगी। और फिर तीन करोड़ हो जाए तो फिर कहना ही क्या है और तीस करोड़ हो जाए तो राष्ट्रपति हो जाएगा। राष्ट्रपति होने की यह खुशी नहीं है कि आप राष्ट्रपति हो गए। राष्ट्रपति होने की खुशी यह है कि चालीस करोड़ लोगों को पीछे छोड़ा जा रहा है, जो चिंता की ऊंची दौड़ है। इसलिए जितने हिंसक आदमी हैं उतनी पद्धति गहरी से गहरी यात्रा को संलग्न होता है और परिणामतः उसके, चूंकि सारे जीवन में दुग्ध होती है, इसलिए मैं कहता हूं कि वह कचरा है। जीवन उससे आनंदित नहीं होता।

सम्राट तीसरे राजकुमार के भी द्वार पर पहुंचा। बहुत निराश और बहुत थका हुआ कि क्या तीनों पुत्र अयोग्य सिद्ध हो जाएंगे। वह बहुत डरा हुआ था। लेकिन उसे क्या पता था कि उसे यह सब घटना देखने को मिलेगी। पहुंचा और देखा घर सूना और शांत था। वहां कुछ भी भरा गया नहीं था। अंधेरी रात थी, दीये जरूर उस घर में जल रहे थे। हजार-हजार दीये जल रहे थे। सम्राट घर में गया। उसने कहा दीये किसने जलाने को कहा था। भवन को भरना था। राजकुमार ने कहा कि आंख हो तो देख सकते हैं कि भवन का कोना-कोना भर दिया गया है। एक तिल भी जगह नहीं जहां भवन खाली हो। सम्राट ने कहा कि मुझे तो कुछ दिखाई नहीं देता, भवन खाली है। उस राजकुमार ने कहा कि संभालो अपने साम्राज्य को, मुझे नहीं लेना है। लेकिन इतना कहे देता हूं कि देखते नहीं कि प्रकाश से भरा हुआ है। और प्रकाश बाहर दूर-दूर तक महल के बाहर पहुंच रहा है। एक इंच भी जगह खाली नहीं जहां प्रकाश से सारा घर भर न दिया गया हो। सम्राट को पहे तो दिखाई नहीं पड़ा कि घर प्रकाश से भरा हुआ है। क्योंकि सम्राट का सारा जीवन कचरे और कूड़े की भांति भरा हुआ बीता था। क्योंकि उसे पता ही नहीं था कि प्रकाश से भी घर को भरा जा सकता है। इसलिए इस राजकुमार की तरफ कितने मनुष्य जीते हैं, जिनका जीवन प्रकाश से भरा हुआ है। और केवल वे ही लोग सारे जीवन को प्रकाश से भर देते हैं, केवल वे ही लोग जीवित कहे जाने के अधिकारी भी हैं, जो अपने जीवन को प्रकाश से भर पाते हैं। क्योंकि उस जीवन के प्रकाश में ही जीवन

के नृत्य और जीवन के संगीत का पूरा अनुभव होता है। उस प्रकाश में ही जीवन के सारे रहस्य खुलते हैं। प्रकाश में जीवन कभी न कभी रूपांतरित हो जाता है। तब जीवन ही परमात्मा बन जाता है और किसी एक व्यक्ति का जीवन प्रकाश से भरता जाता है, तो दूसरों के अंधेरे रास्ते पर वे शूल बन जाते हैं। और जब एक एक घर में दिया जलता है तो सैकड़ों मील दूर तक प्रकाश पहुंच जाता है। और न मालूम कितने लोगों को प्रकाश की यात्रा की प्रेरणा की याद संकल्पकारी बना देती है। प्रकाश से भरे हुए जीवन को मैं जीवन कहता हूं। ऐसे जीवन पाने के क्या सूत्र हैं? इन्हीं सूत्रों पर मैं कुछ आपसे बात करूंगा। क्या मार्ग हैं, क्या द्वार हैं, कैसे यह जीवन इतना आनंदित और अमृत इतना प्रकाश का अधिकारी और हकदार हो जाता है और एक एक व्यक्ति का हो सकता है। अगर दुनिया में एक भी आदमी का जीवन प्रकाश से भरा हुआ हो तो यह निश्चय हो गया कि हर दूसरे आदमी का जीवन प्रकाश से भर सकता है। जब एक मनुष्य के भीतर भर सकता है, तब हर प्रत्येक दूसरे मनुष्य से भर सकता है। क्योंकि मनुष्य और मनुष्य के बीच में मंदता और जड़ता है। एक एक बीज उसमें से अंकुरित होता है और वह फूल खिल जाता है, तो सब बीज हकदार हो गए कि हम क्यों अनखिले हैं, हम भी क्यों न अन्य फूलों से बढ़ जाएं। लेकिन कितने ऐसे लोग हैं जो इस तरह से उनके फूल खिल जाते हैं। शायद हमें इस जीवन के सूत्रों का ख्याल नहीं। यदि हम जिन्हें जीवन के सूत्र समझते हैं, वे हैं जीवन से उलटे रास्ते में ले जाने का। तीन छोटे सूत्र आपको स्मरण दिलाना चाहता हूं।

पहला सूत्र जीवन में सबसे आधारभूत क्या है? कौन सा सूत्र है जीवन में सबसे आधारभूत, इस बात की संभावना और इस बात की आशा और इस बात की निष्ठा की स्वीकृति है कि मैं भी प्रकाश से भर जाऊं। जिसको यह भी संभावना का ख्याल नहीं वह कैसे आने जीवन को प्रकाशित करेगा। मैं भी आनंद को उपलब्ध हो सकता हूं, इस बात का स्पष्ट बोध न हो, तो आनंद की खोज कैसे हो सकती है और हम सब लोग बचपन से ही निराश होने की रूढ़ियां विक्षिप्त किए जाते हैं। जो भी मिलेगा वही कहता है जीवन निरर्थक है, निराशा है, जीवन व्यर्थ है। मैं अभी एक महानगरी में था। और एक छोटी-सी लड़की ने पूछा जिसकी उम्र मुश्किल से नौ वर्ष की थी। उसने मुझसे आकर पूछा कि जीवन से मुक्त होने का उपाय क्या है? मैं तो बहुत हैरान हो गया। नौ वर्ष की लड़की पूछे कि जीवन से मुक्त होने के उपाय क्या हैं, नब्बे वर्ष का बूढ़ा पूछे तो समझ में भी आ सकता है, कैसे वह भी बहुत जो शोभा योग्य नहीं, क्योंकि नब्बे वर्ष का बूढ़ा भी पूछे जीवन से मुक्त होने का मार्ग क्या है? कि जीवन में बार-बार न आना पडे? तो वह इस बात का सबूत है कि उस आदमी ने नब्बे वर्ष गंवा दिए हैं और जीवन का अनुभव करने में असमर्थ रहा है। लेकिन नौ वर्ष का बच्चा पूछने लगे कि जीवन से मुक्त होने का उपाय क्या है। हमने उसके सारे व्यक्तित्व को, सारे जीवन को अंधकार से भर दिया। हमने उससे कहा कि जीवन की संभावनाओं की जड़ें कहां हैं?

जीवन की संभावनाओं की जड़ें कहां हैं? जीवन वहीं बनते हैं जिसकी आशा और जिसकी संभावना के संकल्प को लेकर हम यात्रा शुरू करते हैं।

जापान में कोई तीन सौ वर्ष पहले एक अदभुत घटना घटी। एक छोटे से राज्य पर एक बड़े राज्य ने हमला किया। राज्य इतना छोटा था और सैनिक इतने कम थे कि जो ना के बराबर थे। जीत की कोई उम्मीद न थी। लड़ना हारना ही था। सम्राट के सामने सेनापति ने जाकर कहा कि अब मैं क्या करूं? असमर्थ हूं—सैनिकों को युद्ध पर नहीं ले जा सकता। यह तो व्यर्थ ही उनको मृत्यु की गर्त में झोंकना है। दुश्मन दस गुना बड़ा है। हम कैसे मुकाबला कर सकते हैं। जीत असंभव है। सम्राट यह जानता था और डरा हुआ था कि सेनापति कहीं यही न कह दे। लेकिन सम्राट ही क्या कि बिना लड़े हार जाए, बहुत से लोग हैं, जो बिना लड़े ही हार जाते हैं। निराशा ही हरा देती है। हार की संभावना ही हार बन जाती है। सम्राट अभी डरा था और सोचता था कि क्या करूं? और सेनापति जब अहंकार करता है तो सम्राट ने वजीर से कहा कि मैं एक संन्यासी के पास चलता हूं और जब तक कोई समस्या मैंने उसे वैसा नहीं दिया जिसका समाधान उसने न किया हो। आप कृपा करें, उस संन्यासी तक मेरे साथ चलें और फिर कोई निर्णय लें। अंत में उस संन्यासी के पास गए। बूढ़ा वजीर था। उसने सारी बातें बताइ। उस संन्यासी ने सुना तो हंसने लगा और कहा कि यह सेनापति तो हार ही चुका, इसकी छुट्टी कर दें। इसकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं थी। मैं इसकी जगह चला जाता हूं। सम्राट ने कहा कि आप? शायद आपको तलवार पकड़ना भी

नहीं आता हो। आप युद्ध पर जाएंगे सेनापति की जगह। उस संन्यासी ने कहा कि युद्ध मैं जीतने के लिए नहीं जाता हूं लेकिन तलवार की कर्णधार मैं हूं। युद्ध वे ही जीतते हैं जो जीतने के खयाल से उद्यत होते हैं। तलवार पकड़ना आ सकता है। मैं जाता हूं। आप चिंता छोड़ दें। फिर आपने हारने का तो तय ही कर लिया है। एक मौका दें। संन्यासी ने हाथ में तलवार और टुकड़ी ली और चल पड़ा। सैनिक घबड़ाए कि यह और भी पागलपन हो गया। सेनापति होता तो थोड़ी बहुत आशा भी थी, बहुत कम थी आशा, सौ में दस थी। लेकिन फिर भी सेनापति होता तो आशा थी। लेकिन उसकी जगह यह संन्यासी खुशी से घोड़ा हांके जा रहा है, इससे क्या होगा? यह क, ख, ग, भी नहीं जानता युद्ध का। लेकिन उन्हें यह पता नहीं था कि संन्यासी क्या जानता है? युद्ध न कभी युद्ध विद्या जानने से जीत गए और न कभी जीते जा सकते हैं। इसका मतलब कि संन्यासी और कुछ जानता था। फिर वह नगर के बाहर पहुंच गए। जहां नदी थी और उसके पार दुश्मन का खेमा खड़ा था। सैनिक थरथराने लगे। विशाल सेना थी। दूर-दूर तक जहां तक आंखें जाती थीं, उतनी थी दुश्मन की सेना। छोटी-सी टुकड़ी यह क्या कर सकेगी? संन्यासी जाकर रुका एक मंदिर के पास और उसने कहा, इससे पहले कि इस युद्ध में कूदें, जरा इस मंदिर के देवता से पूछ लें कि हम हारेंगे कि जीतेंगे। मेरा इस देवता से पुराना नाता है, इसलिए हम हमेशा पूछ लिया करते हैं। सेना ने कहा कि देवता ने क्या उत्तर दिया आप तो जानेंगे, लेकिन हम लोग कैसे जानेंगे? कि देवता ने क्या कहा, तुम घबड़ाओ मत! तुम्हारे सामने ही पूछूंगा। उसने खूंटे से एक चमकता हुआ सोने का रुपया निकाला और कहा कि हे परमात्मा अगर हम जीतते हैं तो यह रुपया पृथ्वी पर सीधा गिरे और यदि यह सीधा गिरा तो याद रखें कि दुनिया की कोई ताकत नहीं, जो हमें हरा सकें। उसने

रुपया फेंका, सूरज की रोशनी में चमकता हुआ रुपया आकाश की ओर उठा। उन सैनिकों की आंखें एकटक वहीं लगी रह गइ, जैसे आंख बंद ही न हों, क्योंकि जीवन-मरण का सवाल था। वह रुपया गिरने लगा और वह रुपया पृथ्वी पर सीधा गिरा। उस संन्यासी ने रुपया उठाया और उन्हें दिखाया कि यह रुपया सीधा गिरा है। अब तुम हारना चाहो तब भी नहीं हार सकते। अब जीत अनिवार्य है और वे युद्ध में कूद पड़े। और दस दिन बाद वे युद्ध जीत कर लौटते हैं। फिर लौटने लगे तो सैनिक कहने लगे कि उस मंदिर के देवता को धन्यवाद तो दे दें। उन संन्यासी ने कहा कि छोड़ो उस देता को, यदि धन्यवाद देना है तो मुझे दो, देवता का इससे क्या संबंध है। सेना ने कहा कि क्या पागलपन की बातें करते हो? उसी देवता ने कहा था कि हम जीत कर लौटेंगे। उस संन्यासी ने कहा कि अब मैं तुझे कहे देता हूं उसने खीसे से रुपया निकाला और कहा कि देख लो यह रुपया दोनों तरफ से सीधा है। यह कैसा भी गिरता सीधा ही गिरता। वह दोनों तरफ से सीधा था। लेकिन आदमी ख्याल से गिरे, वह ख्याल ही आदमी की सबसे बड़ी कमजोरी है। और वह ख्याल लड़ने से मरने की लंबी यात्रा में अगर कोई हारने का ख्याल लेकर चलेगा तो जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता। कोई संभावना नहीं है। मनुष्य की हार और जीत उसके प्राणों का प्रबलतम हार है।

एक और घटना मैं तुमसे कह दूं। रूस में एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक कुछ प्रयोग कर रहा था। वह एक यूनिवर्सिटी में गया। तुम्हारे जैसे पड़ते थे विद्यार्थी। वह एम. ए.के विद्यार्थियों की कक्षा में गया और कहा कि मैं एक प्रयोग कर रहा हूं। तीस विद्यार्थी थे। उनको दो टुकड़ों में तोड़ दिया। पंद्रह एक कमरे में और पंद्रह दूसरे कमरे में बिठा दिया और पंद्रह पहले कमरे के विद्यार्थियों के कमरे में जाकर बोर्ड पर एक सवाल लिखा और कहा कि यह सवाल इतना कठिन है कि शायद ही कोई तुममें से इसे हल कर सके, सपने में भी नहीं हल कर सकता। हल करना तो बहुत दूर एकाध-दो कदम इसकी ठीक विधि में कलम उठा सके, यह भी असंभव है। मेरी जानकारी में पृथ्वी पर दस-बारह गणितज्ञ हैं, जो इस सवाल को हल कर सकते हैं। क्या हुआ कि यह बात सुनकर विद्यार्थियों के मनोबल ढीले हो गए, उनके ज्ञान शिथिल हो गए। जब दस-बार गणितज्ञ इस पृथ्वी पर हैं, तो संभावना बहुत छोटी है। सबकी कलमें बंद हो गइ। उनमें से एक विद्यार्थी ने कहा कि फिर हमें यह हल करने को क्यों दिया जा रहा है। वैज्ञानिक ने कहा कि मैं जानूं कि क्या एम. ए. के विद्यार्थियों में भी इतनी प्रतिभा, बुद्धिमत्ता हो सकती है कि वे ठीक विधि में एकाध दो कदम ठीक हल कर सकें। पूरे की तो संभावना ही नहीं लेकिन तुम संभावना ही छोड़ दो। लेकिन अगर तुमने ठीक दिशा में काम किया तो बड़ा गुण होगा और बड़ी योग्यता होगी। मैं जांच करना चाहता हूं। तुम कोशिश करो, शायद कोई, बहुत कमजोर तो नहीं लेकिन शायद कोई थोड़ा बहुत कर पाए। वह

बार-बार दुहराने लगा कि उम्मीद नहीं है कि कोई हल कर पाए। उम्मीद नहीं यह सुझाव लड़कों के कान में बैठ गए। उन्होंने कलमें उठाइ लेकिन जानते हैं कि व्यर्थ है। उन्होंने चेष्टाएं कीं सवाल हल करने की दिशा में, लेकिन जानते हैं कि व्यर्थ है। सफल नहीं हो सकता। वह सवाल हल करने लगे और वह वैज्ञानिक दूसरी कक्षा में गया। उसने वही सवाल बोर्ड पर लिखा और उसने कहा कि यह सवाल इतना सरल है कि तुमसे नीचे की कक्षा के विद्यार्थी भी हल कर सकें। मैं यह भी कल्पना नहीं कर सकता कि तुममें से एक भी विद्यार्थी इसको हल करने में असमर्थ हो जाए। असंभव है। लेकिन तुम एम. ए. तक ऊंचे कक्षा तक आ भी गए हो। यह तो गणित के अ,ब, स, जानने वाले भी हल कर सकते हैं। उसमें से एक विद्यार्थी ने कहा कि फिर हमें क्यों हल करने को दिया जा रहा है? उसने कहा कि मैं एक प्रयोग कर रहा हूं कि ऐसा भी संभव है, हालांकि यह संभव नहीं कि एम.ए. की कक्षा में थोड़ा भी भूल करें, इस सवाल में। इस सवाल में क्या है? मैं एक रिसर्च करता हूं, एक शोध करता हूं, शायद तुममें से कोई असमर्थ हो जाए, कोशिश करो, तुम थोड़ी कोशिश करके देखो आशा नहीं है कि कोई असफल हो जाए। लेकिन मैं इस खोज में हूं कि इतनी ऊंची कक्षा में भी इतना सरल सवाल हल नहीं हो सकता। सवाल वही था। विद्यार्थी उसी वर्ग और योग्यता के थे। लेकिन उनके आंख और कान बिलकुल जकड़ गए। लेकिन एक को यह कहा गया कि यह सवाल इतना सरल है कि नीचे के कक्षा के विद्यार्थी भी हल कर सकते हैं और उनकी आत्मा पूरी आशा से भरी प्राण पूर्वक विश्वास था। क्या हुआ फल? पहले वर्ग के केवल दो विद्यार्थी हल कर पाए सवाल और तरह असफल हो गए। और दूसरी कक्षा में केवल एक विद्यार्थी नहीं कर पाया और पंद्रह विद्यार्थियों ने हल कर दिया। वैज्ञानिक ने हजारों प्रश्न इस तरह के किए और इस नतीजे पर पहुंचा कि आदमी जिस भावना को लेकर काम शुरू करता है सौ में से निन्यानबे वे मौके ऐसे बनते हैं कि वह उसके भाव को, उसकी पूर्णाहुति पर पहुंचा देते हैं। यह जीवन का पहला सूत्र मैं तुमसे कहता हूं कि जीवन को प्रारंभ करना अत्यंत आशा से भरे हुए हो। निराशा पास भी खड़ी न होने पाए। निराशा मौत है। निराशा तुम्हारे प्राणों के मध्य में होती है उसे जगह भी मत देना। उससे बड़ा शत्रु जीवन में और कोई भी नहीं हो सकता है। अगर जीवन में कोई भी संभावना जाग्रत बनानी है तो निराशा उसका आधार नहीं है। और आज पृथ्वी पूरी ही निराशा से भरी है। इसलिए जीवन पर इतना आघात हुआ और इतने कम लोग जीवित हैं। और पृथ्वी रोज-रोज निराशा से भरती चली जाती है। हर पीढ़ी निराशा से भरती चली जा रही है। निराश प्राण निष्प्रम हो जाते हैं, इंपोटेंट हो जाते हैं। निराश व्यक्ति सब कुछ खो देता है, आत्महारा होता है और हम सब आत्महारा होते जा रहे हैं। लड़ने से पहले हमने हार सुनिश्चित मान लिया है। खोजने से पहले हमारे पैर रुकते हैं जन्म के साथ हम सिर्फ मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जीवन में कुछ संपन्न करने की नहीं, जीवन में कुछ निर्मित करने की नहीं, जीवन में कुछ क्रिएटिव कुछ सृजन करने की नहीं, कि जीवन एक मूर्ति बन जाए, जीवन में एक सौंदर्य, जीवन में एक प्रकाश बन जाए, यह पहला सूत्र है।

दूसरा सूत्र अकेली आशा क्या हो सकती है? अकेली आशा कोई लेकर बैठ जाए, उससे क्या होगा। अकेली आशा क्या कर सकती है? अकेली आशा को लेकर कोई बैठ जाए तो वह सिर्फ सपने ही देख सकता है, सुंदर सपने देख सकता है और उसी सपने में ही खोया रहेगा। अकेली आशा क्या करेगी? अकेली आशा से क्या हो सकता है। आशा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता, लेकिन अकेली आशा से भी कुछ नहीं हो सकता। आशा के पीछे, आशा के साथ, सातत्य चाहिए श्रम की, एक सतत श्रम की, अनवरत धारा चाहिए। सारा जीवन श्रम की साधना है।

और हमारा जीवन जैसे आज है, आलस्य की एक लंबी कहानी है। जहां हम समय को गुजारते हैं। जहां हम समय को व्यर्थ जाने देते हैं, जहां हम लोगों को कहते हैं टाइम पास कर रहे हैं, समय गुजार रहे हैं। हर आदमी समय गुजारता है। समय गुजारने वाला मनुष्य कभी कहीं पहुंच सकता है? समय गुजारने वाला अपने को ही गुजार रहा है। समय को कौन गुजारता है। हम नहीं थे, तब भी समय था। हम नहीं होते तब भी समय था । समय को कोई भी नहीं गुजार सकता है। सिर्फ हम ही गुजर जाएंगे। इसलिए मत कहिए कि टाइम को पास कर रहा हूं। जानना कि समय को गुजरना जीवन को गुजारना है। एक एक पल महत्वपूर्ण है और एक एक पल से जूझना महत्वपूर्ण है और एक एक पल में जो भी रस दिया है उसे प्रकट करना जरूरी है। एक एक पल बेकार न चला जाए, उसे जी लेना है, उसमें से पूरे प्राण को निचोड़ लेना है। यह कहने को न रह जाए कि जिंदगी में आया था और समय और बह गया और मैं उसे जी नहीं पाया। लेकिन सारे जगत का जीवन दर्शन

आलस्य का है। श्रम का नहीं। सारे जगत का जीवन-दर्शन जीवन को गुजार देने का है। जीवन एक उपभोग का नहीं, जीवन एक अवसर है और उसको निकाल लेना है। उसको कोई खयाल नहीं करता है। एक पत्थर पड़ा हो गौर वह पड़ा ही रहेगा तो वह पड़ा ही रहेगा करोड़ों वर्ष तक पत्थर की तरह ही, जब तक किसी कलाकार की छैनी और हथौड़ी उस पर पड़ेगी नहीं। छैनी, हथौड़ी पड़ेगी और उस पत्थर के टुकड़े छिटकने लगेंगे और वह अनगढ़ पत्थर निश्चित ही एक मूर्ति में परिवर्तित हो जाएगा। लेकिन करोड़-करोड़ वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ेगी उस पत्थर को उठाने की, जो पत्थर को तोड़ने में संलग्न हो जाएगा तब पत्थर मूर्ति बनता है। जीवन भी प्रतीक्षा करता है उनकी, जो जीवन को तोड़ कर मूर्ति बनाने के लिए आबद्ध होते हैं। लेकिन हम सारे लोग एक अनगढ़ पत्थर की तरह जीवन गुजार देते हैं। पत्थर वैसे ही पड़ा रहता है और प्रतीक्षा करता है कि कोई आएगा और तोड़ेगा और मूर्ति प्रगट हो जाएगी। एक-एक जीवन अनगढ़ पत्थर है जो श्रम करता है और उससे एक सुंदर मूर्ति निकालने में समर्थ होता है। युवक मुझसे पूछते हैं स्कूलों में, कालेजों में, जीवन क्या है? जीवन में अर्थ क्या है? जीवन में अर्थ बिलकुल नहीं है । जीवन में उतना ही अर्थ होता है जितना तुम पैदा करते हो। तो तुम यह मत पूछो कि जीवन का क्या अर्थ है? यह पूछो कि जीवन में अर्थ दृढ़तापूर्वक कैसे उपलब्ध हो सकता है? जीवन में अर्थ मिला हुआ, बना हुआ, रेडीमेड नहीं है। जीवन में अर्थ नहीं दिखाई पड़ता है। हर आदमी पूछता है कि जीवन में अर्थ क्या है? और जीवन में अर्थ नहीं दिखाई पड़ता है तब दार्शनिक कहते हैं कि जीवन अर्थ ही न है। निरर्थक है...। जैसे पश्चिम के लोग कहते हैं कि जीवन में कोई अर्थ नहीं है। अर्थहीन है, ये जैसी बैठी हुई हैं वीणा लिए हुए, और हम पूछें कि वीणा में अर्थ क्या है? वीणा में क्या अर्थ है? तार है? तंबूरा है? अर्थ क्या है। अर्थ उसको प्रकट होता है जो वर्षों तक वीणा के साथ श्रम करेगा। और तब वीणा, तार और तंबूरा नहीं रह जाएगी। वीणा एक अलौकिक संगीत के अवतरण का अवसर बन जाएगी।

मैंने सुना है कि एक घर में बहुत दिनों से एक वीणा रखी थी। न मालूम बूढ़ों के समय से रखी थी। घर के बच्चों को पता भी न था कि कौन उसे बजाता है। वह वीणा एक कोने में रखी थी। उस वीणा को कभी कोई बिल्ली या चूहा हिला देता है और उसके तार झनझना जाते हैं। रात आधी हो और तार झनझना जाते हैं तो घर के लोग कहते हैं कि इस वीणा को फेंको। रात नींद खराब कर दे रही है। कभी कोई बच्चा उसके तारों को छू देता है और तब घर के लोग कहते हैं कि वीणा एक डिस्टर्बेंस हो गई। क्या अर्थ है इस वीणा को घर में रखने का। घर में कूड़ा कर्कट इकट्ठा करने का। कभी गिर जाती है तो आवाज इधर कभी जाती है, कभी उधर जाती है। अलग करे इस वीणा को। फिर आखिर में उस घर में लोगों ने कहा कि अलग ही कर दो। और एकदम फेंक आए उसे कूड़े पर उसको। वीणा अर्थहीन थी उनके लिए। जीवन के साथ भी हम कुछ ऐसे ही करते हैं। लेकिन उसी सांझ को एक भिखारी गुजरता था उस मार्ग से और उस वीणा को उठा कर बजाने लगा। और उस वक्त मंत्र-मुग्ध होकर उस भिखारी के पास घर के सब लोग खड़े हो गए और भीड़ कर दिए। सारा गांव वहां धीरे-धीरे जुट गया। और अंत में उस घर के लोगों ने कहा कि यह वीणा हमारी है, यह हमने ही फेंकी थी, हमें वापस दे दो। उस भिखारी ने कहा कि तुम कचरे में फेंक आए थे, अब वीणा तुम्हारी नहीं, वीणा हमारी है। जो वीणा को बजाना जानता है, वीणा की और कोई मालकियत नहीं होती है, बजाने की कुशलता और कला ही, वीणा की मालकियत है। जीवन भी उसी का है, जो जीवन को बजाना जानता है। जीवन मिल गया उससे कुछ भी नहीं मिल गया। उसे कैसे जीना, उस जीवन को, इस वीणा के उदाहरण से प्रकट हो सकता है। कैसे प्रतीक्षा करने से, राह देखने से, या कुछ श्रम करने से, श्रम पर तो खयाल ही नहीं रह गया। श्रम का कंसेप्ट श्रम की धारणा ही इस दुनिया से मिट गई। हम एक ही खोज में लगे हैं कि श्रम से कैसे बच जाएं सारा विज्ञान एक खोज में लगा है कि आदमी का प्राण कैसे बच जाए। और आदमी खोज कर रहा है कि बिना श्रम के हम कैसे जीएं। निश्चित ही मैं कहता हूं कि पांच सौ वर्ष तक ऐसी ही स्थिति चलती रही तो सारी दुनिया एक ही नतीजे पर पहुंच जाएगी कि आत्म हत्या कर लेनी चाहिए, जीवन की गुंजाइश नहीं है। जीवन एक कचरा है। वीणा जैसे कूड़े और कचरे घर में फेंक देना चाहिए और आज मनुष्य करीब-करीब इस निष्कर्ष पर पहुंचने लगा है। पिछले पचास वर्षों में पश्चिम के बड़े-बड़े विचारकों के आत्म हत्याएं की हैं और उनसे पूछा गया कि आप क्यों मरने को इतने उत्सुक हैं? जिसने आत्म हत्याएं कीं, तो उसने एक पत्र लिखा मरने से पहले अपने एक मित्र के नाम कि तुम यह मत सोचना कि मैं दुखी था इसलिए मर रहा हूं, तुम यह मत सोचना कि मैं किसी कठिनाई में था, इसलिए मर रहा हूं। मैं मर इसलिए रहा हूं कि जीवन व्यर्थ था और तुम यह भी मत

सोचना कि मैं कायर था इसलिए मर रहा हूं। मैं तुम से इसलिए कह जाता हूं कि तुम कायर हो इसीलिए जी रहे हो, नहीं तो कभी के मर जाते। युग यह कहता है कि जो जी रहे हैं, वे कायर हैं कावर्ड हैं। मरने की हिम्मत नहीं इसलिए जीते हैं। और उसकी बात थोड़ी दूर तक सच भी है। अगर जीवन व्यर्थ हो तो जीने की जरूरत क्या है? सिवाय कायरता कि और कौन जिलाएगा। या तो जीवन को सार्थक बनाओ, अन्यथा जीने के हक को खो देते हैं हम। किस मुंह से हम कह सकते हैं कि जीने के हम हकदार हैं। क्या हक है कि मैं जीऊंगा और पृथ्वी पर वजन बनूंगा। अगर मुझे कोई हक नहीं है कि विदा हो जाने का, अगर विदा नहीं हो जाना है, तो उस अर्थ को पैदा करने के लिए हमें संलग्न हो जाना—इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है। या तो आत्महत्या इन दो के सिवाय कोई उपाय नहीं है। और जो युग जीवन को निर्मित करने की साधना श्रम छोड़ देता है, वह धीरे-धीरे सभी आत्म हत्याकारी होती चली जाती है। अभी मैं एक घंटे बोलूंगा और एक घंटे में साठ लोग आत्महत्या कर लेंगे। यानि प्रति बूढ़ों एक आदमी आत्महत्या करता है। और यह संख्या रोज-रोज बढ़ती ही जा रही है। हजारों लोग रोज आत्महत्याएं करते हैं, क्या हो गया है उनको? एक घटना अजीब घट गई और जीवन अर्थहीन है। जीवन अर्थहीन होगा तो उसमें जीवन पैदा होता है श्रम से। और अर्थ मनुष्य का क्रिएशन है, उसका निर्माण है, अर्थ कहीं है नहीं। इसलिए तुम्हारे जीवन में उतना ही अर्थ होगा, जितना तुम अर्थ पैदा करने की तत्परता रखते हो। बुद्ध के जीवन में उतना ही अर्थ है, जितना उन्होंने श्रम किया, महावीर के जीवन में उतना ही अर्थ है जितना उन्होंने श्रम किया। तुम्हारे और मेरे जीवन में उतना ही अर्थ होगा, जितना तुम और हम रम करेंगे। इसलिए तुम यह मत पूछना कि जीवन में अर्थ क्या है? यह पूछना कि जीवन में श्रम कितना किया है? श्रम का पुरस्कार है अर्थ।

इसलिए मैं दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं कि जीवन एक सतत श्रम पाने की आवश्यकता है। एक क्षण भी खोना उचित नहीं। क्योंकि दूसरे क्षण को कोई भरोसा नहीं है।

मैं अभी एक गांव से गुजर रहा था। वर्षा हुई थी। एक नदी पर पानी भर गया था। और मुझे उसके कारण कुछ क्षण के लिए अपनी गाड़ी रोक देनी पड़ी। मेरे पीछे एक और कार आ रही थी। उसमें दो-चार लोग बैठे थे। मैं तो उन्हें नहीं जानता था, वे मुझे जानते होंगे। मैं बैठा था एक चट्टान पर गाड़ी से उतर कर। तो वे भी गाड़ी से उतरे और बैठ गए और बातचीत होने लगी। जब पानी उतरने लगा, तब वे चलने और चलते वक्त क्योंकि उनके पास बड़ी गाड़ी थी, और मेरी छोटी थी तो मैं दस मिनट बाद निकला, जब और पानी उतर गया उन्होंने कहा कि आपने जो बातें कहीं, वे बहुत ठीक कहीं। हम उस दिशा में कभी ठीक काम करेंगे। तब मैंने कहा कि कभी, तब यह कहो कि वह ठीक नहीं था, क्योंकि कभी कब आए? और बीच में कह क्या करें? वे कहने लगे लौटकर हम आपसे मिलेंगे। हमने कहा कि लौटकर, लौटकर मिलने का क्या भरोसा! हो सकता है कि हम दोनों की समाप्त हो जाएं, और मिलने की कोई संभावना न हो। चलते-चलते उनको मैंने एक कहानी कही।

मुझे पता भी न था कि कहानी एक सच्ची घटना बन जाएगी और प्रमाण बन जाएगा। मैंने उनसे कहा कि आप जाते हैं तो मैं एक छोटी-सी कहानी आपसे कह दूं। चीन में एक सम्राट ने अपने वजीर को पांच वर्ष की सजा दे दी। कुछ नाराजगी थी, कुछ भूल हो गई थी। लेकिन उस सम्राट को यह नियम था कि फांसी के एक दिन पहले सम्राट उसके पास जाता था और कहता था कि यदि तेरी कोई इच्छा या मर्जी हो तो वह पूरी कर लो। फिर यह तो सम्राट का अपना वजीर था और बड़ा प्यारा वजीर था। तो सम्राट एक दिन पहले गया और उनसे अपना घोड़ा कारागार के बाहर बांधा। खिड़कियों के बाहर घोड़ा दिखाई पड़ता था। सम्राट आया वजीर के पास। वजीर बड़ा हिम्मतवर आदमी था, लेकिन सम्राट को देखते ही उसके आंखों में झर-झर आंसू गिरने लगे।

सम्राट ने कहा तुम रोते हो। यह विश्वास के बाहर है। तुम्हारी आंखों में आंसू? तुम कभी मैदान में युद्ध के पीछे नहीं हटे, तुम कभी शेरों से जूझने से पीछे नहीं हटे, तुम मौत को देखकर डरते हो? उस वजीर ने कहा, मौत को देखकर मैं नहीं डर रहा हूं। मौत को देखकर कौन डरता है। तो किस बात की संभावना है, कहो। और पूरा कर लो। उसने कहा कि अब वह पूरा नहीं होगा। सम्राट ने कहा, फिर भी। मैं इसीलिए आया हूं। तो उसने कहा कि पच्चीस साल मेहनत करके एक सीक्रेट आर्ट सीखा, एक गुप्त कला सीखी—मैं घोड़े को आकाश में बढ़ना सिखा सकता हूं। लेकिन जिस जाति के घोड़े को उड़ना

सिखाता, वह खोजता था, नहीं मिला और आज आप जिस जाति के घोड़े पर बैठ कर आए हैं। वह उसी जाति का घोड़ा है। सम्राट ने कहा, खैर, छोड़ो उस बात को। लेकिन कल सुबह मर जाना है।

सम्राट के मन में लोभ समाया। घोड़ा भी आकाश में उड़ सके, तो दुनिया में उस जैसा कोई सम्राट नहीं रह जाएगा। अगर घोड़ा आकाश में उड़ सके, तो युद्ध में कोई मुकाबला न रह जाए। छोड़ फिकर फांसी की। कितने दिन में घोड़ा आकाश में उड़ सकता है। उसने कहा, ज्यादा नहीं एक वर्ष लग जाएगा। बादशाह ने कहा कि घोड़ा एक वर्ष में आकाश में उड़ना सीख जाएगा तो भविष्य में न तू वजीर रह जाएगा, बल्कि आधे राज्य का मालिक हो जाएगा। और घोड़ा उड़ना न सीख सका तो समझ लेना कि फांसी हो जाएगी। वजीर घोड़े पर अपने घर बढ़ना लौट आया। पत्नी और बच्चे उसके रोते थे।

वजीर को लौटने देख कर उसकी पत्नी कहने लगी कि तुम लौट कैसे आए।उसने कहा कि मैंने सम्राट से कहा कि मैं घोड़े को उड़ना सिखा सकता हूं आकाश में। उसने कहा कि तुम घोड़े पर बैठना भी नहीं जानते, तुम आकाश में उसे उड़ा कैसे सकते हो? तुमने कब सीखा था? उसने कहा कि मैंने कभी नहीं सीखा था, लेकिन मुझे वर्ष भर की मोहलत मिल गई। उसकी पत्नी छाती पीट कर रोने लगी कि तुम पागल हो गए हो। यह वर्ष तुम्हारे हमारे मर जाने के बराबर है। वह दिन कब आएगा, जब तुम मर जाओगे। अगर मांगना ही था तो दस-पच्चीस वर्ष मांगते वर्ष भर क्यों मांगा। उसने कहा पागल तुझे समय का कुछ भी पता नहीं। कौन जाने वर्ष भर में घोड़ा मर जाए, मैं मर जाऊं, सम्राट मर जाए। वर्ष भर बहुत होता है। क्षण भर भी बहुत लंबा है। और घटना बड़ी अजीब है कि उस वर्ष घोड़ा भी मर गया, वजीर भी मर गया और सम्राट भी मर गया। तीनों ही मर गए। तो मैंने जाते वक्त उनसे कहा कि कल का क्या भरोसा? एक क्षण का भी भरोसा नहीं। जो करना है, वह अभी और यहीं...। लेकिन वे चल पड़े और मैं दस मिनट बाद निकला और जब मैं रास्ते में पहुंचा तो वे मुझे मरे हुए मिले। मुझे उम्मीद नहीं कि ऐसा हो जाएगा। मेरे ड्राइवर ने कहा कि आपने कैसे कहानी कही। मैंने कहा कि ऐसी आशा हो सकती है। जीवन का एक-एक क्षण इतना मूल्यवान है और दूसरे क्षण का कोई भरोसा नहीं, इसलिए तुम यह मत सोचना कि कल, परसों, जो पोस्टपोनमेंट की भाषा में सोचता है, वह जीवन को खो देता है। आज और यहीं जीवन एक स्पंदन है। सतत श्रम एक अर्थ की खोज, एक इंक्वायरी, एक जिज्ञासा एक यात्रा। इसलिए बैठे-बैठे तुम जिंदगी को मत खो देना। जिंदगी को बताना है कि मौत के वक्त तुम कैसे जिंदगी को बता सकते हो कि जिंदगी तुम्हारी है। और जो जिंदगी को बनाने में और सोचने में समर्थ हो जाता है, हैरान होओगे तुम कि उसके लिए मौत समाप्त हो जाती है। मरते वक्त वह जानता है कि जो अर्थ उपलब्ध हुआ है, वह नहीं मर सकता है। वह मरते वक्त जानता है कि जो जीवन जाना है वह कोई मृत्यु नहीं। और इसलिए दूसरा सूत्र है—सतत श्रम।

और तीसरा सूत्र—और अंतिम सूत्र क्या है? किस बात की आशा करेंगे, किस बात पर श्रम करेंगे? तीसरा सूत्र है कि जीवन को बाहर मत खोजो। जो जीवन को बाहर खोजते हैं, वे कुछ भी जीवन को उपलब्ध नहीं कर पाते। खोजना जीवन को भीतर स्वयं में है, और अपने में है स्वयं, वहां जहां प्राणों का प्राण है, वहां जहां मेरे अस्तित्व के पल्लव उगते हैं, फूल आते हैं, जहां से सांस चलती है, खून आता है, जहां से विचार जन्मते हैं, जहां से चेतना उठती है, वहां खोजना भीतर जड़ों में। स्वयं के भीतर। तो वह जीवन हो सकता है। तीसरा सूत्र है—खोजना भीतर स्वयं में। और आज सारी पृथ्वी बाहर-बाहर खोज रही है। हमारी आंखें बाहर खोज रही हैं, हमारे हाथ बाहर खोज रहे हैं, हमारे प्राण बाहर खोज रहे हैं, हमारी बुद्धि बाहर खोज रही है, बाहर, बाहर, बाहर। हमारा सारा जीवन बाहर का एक जोड़ है। जब कि असली जीवन भीतर का जोड़ हो जाता है। भीतर क्या खोजा है तुमने? भीतर गए हो कभी? कभी कोई परिचय बनाए हो उससे कि तुम्हारे भीतर हो। शायद कभी नहीं बनाया होगा। तुम बनाओगे क्या? बूढ़े और वृद्धा भी जब भीतर की खोज की बात से भरते हैं तब भी बाहर मंदिर जाकर बैठकर पूजा करते हैं। बूढ़े भी जब भीतर के ख्याल को भरते हैं तो बाहर से किताबें पढ़ते रहते हैं। गीता, कुरान और बाइबिल बूढ़े भी जब भीतर की यात्रा का ख्याल करते हैं, तो भी बाहर की यात्रा चालू रखते हैं। मंदिर, तीर्थ, लेकिन भीतर न कोई मंदिर है, न कोई तीर्थ है, चर्च है। लेकिन भीतर की हमने कभी सोचा ही नहीं और उसका कोई पता ही नहीं। तो तीसरी बात तुमसे कहना चाहता हूं कि भीतर की यात्रा अंतर्यात्रा कैसे करोगे तुम? बाहर की यात्रा के बहुत से उपाय हैं। बैलगाड़ी से लेकर राकेट तक। लेकिन भीतर की यात्रा के उपाय क्या हैं? किस वाहन पर सवारी करोगे? भीतर की सीढ़ियों के पास वे ही

जा सकते हैं जो अपने जीवन को प्रकाश से भर पाते हैं और जिज्ञासा के साथ सतत जो श्रम करते हैं, वे ही उन सीढ़ियों तक पहुंचने का अंततः जिज्ञासा के साथ सतत श्रम ही भीतर का वाहन है। कभी चौबीस घंटे के लिए अकेले में बैठ जाइए और पूछते चले जाना कि मैं कौन हूं, मैं कौन हूं? सिर्फ इतना ही पूछते चले जाना कि मैं कौन हूं और सारे विचारों को छोड़ देना। सिर्फ सीखेंगे, उत्तर नहीं दे देना कि मैं आत्मा हूं, परमात्मा हूं, उत्तर बाहर से आएगा। और जब यह उत्तर आए कि मैं आत्मा हूं, परमात्मा हूं, तब जीवन पूर्ण और शांत हो जाएगा। और ऐसी शांति जिसे तुमने कभी जाना नहीं, ऐसी शांति जिससे तुम्हारा कोई परिचय भी नहीं, ऐसी शांति जो बिलकुल अजनबी है और वह शांति तुम्हें दबाती चली जाएगी और तुम पूछते चले जाओगे कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? और एक घड़ी आएगी कि प्रश्न बिलकुल मिट जाएगा और प्रश्न भी तुम्हें बाधा मालूम पड़ेगा। और वह इतनी घनीभूत होगी कि उससे तुम यह भी न पूछ सकोगे कि तुम कौन हो। और तुम जहां शत्रु हो जाओगे उस पथ पर, वह जो भगवान का मंदिर है, और वहां तुझे आंतरिक मौन जीवन की झलक, जीव के अंतरंग, जीवन की अमृत...।

तीन बात—आशा से भरे हुए श्रम के लिए दया और मैं कौन हूं, इसकी जिज्ञासा से भरे हुए जो आदमी यात्रा करता है, वह तब जीवन ही हो जाता है। उसका जीवन हमेशा प्रकाश तक पहुंच जाता है, उसका जीवन आत्मा और परमात्मा की खोज तक पहुंच जाता है। इसे मैं कहता हूं जीवन की शांति, इसे मैं कहता हूं जीवन का आनंद। परिवर्तन जीवन का आमूल परिवर्तन ट्रांसफर्मेशन आफ लाइफ। सारे धर्म का इतना ही सार है।

मेरी बातों को इतने ध्यानपूर्वक सुना उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

1968

काशी हिंदू विश्व विद्यालय 13 अगस्त आचार्य श्री रजनीश का तीसरा प्रवचन, काशी में।

मेरे प्रिय,

नये मनुष्य के जन्म के लिए तभी विचार संभव है, जब पुराने मनुष्य को गलत समझने की भावना साफ और स्वीकृत हो। अब तक तो हमारी धारणा यही रही है कि पुराना मनुष्य ठीक, सभ्य था। निरंतर आज के नेता के लिए हम अतीत का अनुकरण किए चले जाते हैं। रोज-रोज यह बात दोहराई जाती है कि अब सब कुछ विकृत हो गया है। पहले सब ठीक था। लेकिन कोई भी यह नहीं पूछता है कि बीते हुए दिन अगर ठीक थे तो आज कहां से पैदा हो गया है। अगर कल ठीक था तो आज का जन्म कहां से हुआ है। जो आज है वह कल से निःस्पंद हुआ है। वह कल से निकला है और दुनिया अगर रोज-रोज विकृत होती चली जाती हो तो यह समझ लेना आवश्यक है, कि इस विकृति के बीज हमेशा से मौजूद रहे हैं। हो सकता है कि उस विकृति की अभिव्यक्ति रोज-रोज ज्यादा प्रकट और स्पष्ट होती चली जाती है। लेकिन आमतौर से हम यह समझ लेते हैं कि आज विकृत हो गया है। आज का आदमी कुछ खराब है, कलियुग है या कुछ और। पहले सब ठीक था तो आज अचानक सब गलत हो जाना कोई कारण नहीं। जीवन एक सतत अविछिन्न धारा है। गंगा काशी आकर न तो अनायास पवित्र हो सकती है और न अनायास अपवित्र हो सकती है। वह जो काशी आकर गंगा हो जाती है उसके बीज गंगोत्री से ही प्रारंभ हो जाते हैं। लेकिन बीमारियां जब पूरी तरह प्रकट होती हैं, तब ज्ञात होती हैं, आरंभिक लक्षण अधिकतर नहीं पहचाने जाते। आज जैसा मनुष्य है ये पिछले पांच-दस हजार वर्ष की संस्कृति की निष्पत्ति है। उसका फल है। अगर आज का मनुष्य गलत है तो जान लेना जरूरी है कि आज तक समस्त मनुष्य गलत था। आज को दोष देने से, अथवा और बीते पर गुमान कहने से न तो कोई समाधान है न कोई अंत है। न कोई उपाय। वर्तमान की निंदा और अतीत की प्रशंसा से कुछ भी हल नहीं होगा, कठिनाइयां और बढ़ती हैं। पहनी कठिनाई तो यह बढ़ जाती है कि जब हम कहते हैं कि आज सब विकृत और कुरूप हो गया तो स्वभावतः एक ही निष्कर्ष ख्याल आता है कि यदि हम पीछे वापस लौट चलें कि जैसा आदमी था वैसे हम पुनः हो जाएं, तो सब ठीक हो जाए। यह और भी खतरनाक बात है। क्योंकि जो पीछे था उसी से आज का जन्म हुआ है। और कोई बीमारी की पिछली अवस्थाओं में लौट जाने से बीमारी से मुक्त नहीं होता। बल्कि बीमारी जब पूरी प्रकट हो जाए तो जानना चाहिए खोजना चाहिए कि बीमारी जब अप्रकट थी तब उसके क्या लक्षण थे। और यह दृष्टिकोण हमेशा से रहा है

कि अतीत की हम प्रशंसा करते रहे हैं। मैंने अब तक कोई ऐसी किताब नहीं देखी, जिसमें यह लिखा हो कि आजकल के लोग ठीक हैं। दुनिया की पुरानी से पुरानी किताब यह कहती है कि आजकल के लोग बिगड़ गए हैं। पहले के लोग ठीक थे। मैंने सुना है कि जो कि छह हजार वर्ष पुरानी है। उसकी भूमिका को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे आधुनिक किसी लेखक ने इस जमाने के संबंध में कुछ लिखा हो। भूमिका में लिखा है कि आजकल के लोग बिलकुल ही पतित और नारकीय हैं, अनैतिक हो गए हैं, अनाचारी हो गए हैं, पहले के लोग अच्छे थे। छह हजार वर्ष पुरानी भूमिका में अगर ऐसा लिखा तो क्या यह पूछना संगत न होगा कि ये पहले के लोग कब थे? ये कभी थे? या कि हमारी कल्पना काम कर रही है। ये पहले के लोग कभी भी नहीं थे, लेकिन कल्पना और अनुमान ने बड़े काम किए हैं। आज से दो हजार वर्ष बाद न तो आपकी किसी को स्मृति होगी और न मेरी। लेकिन गांधी याद रह जाएंगे, रामकृष्ण याद रह जाएंगे, रमण याद रह जाएंगे। दो हजार साल बाद जो असली आदमी था, जो वास्तविक आदमी था, वह तो भूल जाएगा, जो अपवाद थे वे स्मरण रह जाएंगे। और दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे कि गांधी के जमाने के लोग कितने अच्छे थे। गांधी से निर्णय बिलकुल ही असत्य होगा। वह असत्य इसलिए होगा कि गांधी हमारे प्रतिनिधि नहीं थे, गांधी हमारे बीच अपवाद थे। गांधी ऐसे नहीं थे जैसे हम हैं। गांधी वैसे थे, जैसे हमें होना चाहिए। और दो हजार वर्ष बाद गांधी हमारे प्रतीक हो जाएंगे। और लोग सोचेंगे कि कितना अच्छा युग था। गांधी का युग, गांधी जैसे लोग। असलियत उलटी है। हम गोडसे जैसे तो बिलकुल नहीं हो सकते। यही हमेशा हुआ। बुद्ध हमें याद हैं, क्राइस्ट हमें याद हैं, कंफ्यूशियस हमें याद हैं। और इन थोड़े-से लोगों के आधार पर हम पुरानी आदमियत के संबंध में जो नतीजे लेते हैं वे एकदम भ्रांत और झूठे हैं। बल्कि सच्चाई यह है कि अगर महावीर के समय के लोग अहिंसक होते हो महावीर को याद रखने की भी कोई जरूरत नहीं रह जाती और अगर बुद्ध के समय के लोग बुद्ध जैसे होते तो बुद्ध को महापुरुष कहने का भी उपाय न रह जाता। इन सारे लोगों को हम हजारों वर्षों के बाद भी याद कर रहे हैं। वह सिर्फ इसलिए कि वे बहुत अनूठे और अद्वितीय लोग थे। उन जैसा कोई भी नहीं था। जिस दिन महान मनुष्यता का जन्म होगा उस दिन महापुरुषों का युग समाप्त हो जाएगा। महापुरुष तभी तक दिखाई पड़ना संभव है, जब तक आदमियत नीची ओछी और विकृत है। अंधेरी बदलियों के बीच चमकती हुई बिजली की रेखा दिखाई पड़ती है और सारा आकाश विद्युत से भरा हो, तो विद्युत कहीं भी दिखाई नहीं पड़ेगी। स्कूल का साधारण सा शिक्षक भी जानता है। सफेद दीवाल पर सफेद अक्षरों से लिखना व्यर्थ है। वह काले तख्ते पर लिखता है। वह सफेद खड़िया काले तख्ते पर दिखाई पड़ती है। महावीर और बुद्ध हमें दिखाई पड़ते हैं। वे बड़ी मनुष्यता के काले तख्ते पर सफेद खड़िया की लकीरों के कारण। और कोई कारण नहीं। लेकिन उनके आधार पर हमने नतीजा ले लिया है कि मनुष्य ठीक था। कोई पूछता भी नहीं कि बुद्ध की शिक्षाएं क्या हैं जीसस की शिक्षाएं क्या हैं? क्या समझा रहे हैं वे लोगों को? समझा रहे हैं चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, हिंसा मत करो, घृणा मत करो। यही समझा रहे हैं। अगर लोग ईमानदार थे और चोर नहीं थे तो बुद्ध क्राइस्ट और महावीर पागल रहे होंगे। ये सारी शिक्षाएं किसके लिए? किससे कह रहे हैं कि चोरी मत करो? किससे कह रहे हैं कि बेईमानी मत करो? ये बातें किससे कहीं जा रही हैं। और अगर हम गौर से देखें तो बुद्ध की शिक्षाएं और महावीर की शिक्षाओं का आज भी बदलने का कोई कारण नहीं है। वही शिक्षाएं आज भी हमें देनी पड़ रही हैं। यह किस बात का सबूत है? यह इस बात का सबूत है कि आदमी जैसा आज है, करीब-करीब वैसा ही हमेशा था। क्योंकि जो शिक्षाएं आज उसे जरूरी हैं, वही शिक्षाएं हमेशा जरूरी थीं। दवाइयां खबर देती हैं, बीमारियों की। शिक्षाएं खबर देती हैं आदमी स्थिति की। स्वस्थ आदमी के लिए दवाओं की जरूरत नहीं होती। और जो दवाइयां पांच हजार वर्ष पहले जरूरी थीं वही अगर आज भी जरूरी हैं तो आज को गाली देना नासमझी है। यह जान लेना जरूरी है कि मनुष्य जैसा आज तक रहा है। वह पूरी मनुष्यता ही कुछ गलत कर रही है। नये मनुष्य का जन्म कभी भी नहीं हो सकता इसलिए कि पुराने को हम ठीक मान कर बैठ गए हैं। और पुराना अगर गलत न होता तो जैसा आदमी आज पैदा हुआ है, यह पैदा नहीं हो सकता था। इसके पैदा होने की कोई जरूरत न थी। यह आसमान से पैदा नहीं हो गया है। यह परंपराओं की निष्पत्ति है जिनमें आज तक मनुष्यता जीती रही। जरूर उनमें रोग के मूल बीज छिपे हुए हैं। इसलिए जब मैं यह कहता हूं कि नये मनुष्य की जरूरत है तो मैं यह नहीं कर रहा हूं कि आज का मनुष्य गलत है और पहले मनुष्य ठीक था। मैं यह कह रहा हूं कि आज तक का ही मनुष्य गलत रहा है और जब तक यह स्पष्ट न हो जाए तब तक हम मार्ग नहीं खोज

सकते। क्योंकि बार-बार हमारा मन पीछे लौटने का होने लगता है और पीछे कोई रास्ता नहीं है। पीछे से हम होकर आ रहे हैं और वही रास्ता हमें यहां ले आया है। इसलिए रामराज्य की बातें, अतीत की बातें, मनुष्य को पीछे लौटा ले जाने की बातें सार्थक नहीं हैं। उससे ज्यादा अहितकर कुछ भी नहीं हो सकता क्योंकि जिन रास्तों पर हम लौटने का निर्णय करते हैं, बार-बार उन रास्तों पर आदमी चल चुका है। और उन रास्तों से चलकर वहां पहुंचा है जहां आज वह खड़ा है। उन पर फिर उसे लौटा कर ले जाने का सिवाय इसके कोई अर्थ नहीं होगा कि दो-तीन हजार साल में वह फिर वहीं पहुंच जाए, जहां आज पहुंचा है। अगर आज जोर जबरदस्ती से रामराज्य स्थापित कर लिया जाए तो तीन हजार साल में फिर हम वहीं पहुंच जाएंगे। जहां हम खड़े हैं। यह वैसे ही है, यह वैसा ही पीछे लौटने का खयाल आदमी में बार-बार पैदा होता है। और उसका कारण यह नहीं कि पीछे आदमी ठीक था। इसके कारण दूसरे हैं। और मनोवैज्ञानिक हैं। ऐतिहासिक नहीं। हर आदमी को बचपन की स्मृति है कि बचपन सुंदर था और सुखद था। मनुष्य पहले ठीक था और अब गलत हो गया है। और यही मनोवैज्ञानिक कारण मनुष्य अपने पूरे इतिहास में बार-बार दुहरा लेता है कि कल ठीक था और अब गलत हो गया है। बचपन की सुखद स्मृति है। कारण अतीत के इतिहास का ठीक होना नहीं। और बचपन की स्मृति भी इसलिए सुखद है कि हमें जीवन के जीने की कला का भी ठीक अंदाज नहीं। अन्यथा यह होना विकृत और रोग का लक्षण है कि बुढ़ापे में आदमी कहे कि बचपन के दिन सबसे सुखद थे। इसका मतलब यह हुआ कि बचपन के बाद इस आदमी का जीवन आनंद की तरफ विकसित नहीं हो सका। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि बचपन के बाद यह आदमी गलत ढंग से जी रहा है। बचपन अगर सुखद था तो उसका अर्थ यह हुआ कि हम विकसित नहीं हुए। हमने जीवन की खोज ही नहीं की। जीवन के रस और आनंद से हम परिचित ही नहीं हुए, अन्यथा जीवन का अंतिम दिन सबसे ज्यादा सुखद और आनंद पूर्ण होना चाहिए। अगर जीवन एक विकास है तो मरने की घड़ी जीवन के अनुभव की चरम घड़ी होनी चाहिए। मृत्यु का क्षण जीवन की अनुभूति का परिपूर्ण क्षण होना चाहिए। लेकिन हम कहते हैं कि जन्म के दिन सबसे सुखद और सुंदर थे। और जब कवि इसके गीत गाते हैं तो हम बड़े प्रसन्न होते हैं। बचपन की सुखद और सुंदर अनुभूति सारे जीवन की निंदा है। और सारे जीवन के गलत होने का सबूत है। और यही स्मृति चूंकि हर एक मनुष्य के मन में बैठी हुई है अतः इसी स्मृति का प्राजेक्शन प्रक्षेप और विस्तार होता है। और हम कहते हैं कि पहले के दिन ठीक थे। धीरे-धीरे पूरे इतिहास पर यह वृति लागू हो जाती है। और निरंतर हम पीछे लौटने का भाव लेने लगते हैं। नये, आज के आधुनिक वर्तमान के मनुष्य को बदलने के लिए हम पुराने मनुष्य की तस्वीर उसके सामने खड़ी करते हैं। एक बात जाननी जरूरी है। मनुष्य पीछे नहीं लौट सकता। उसके अनुभव बहुत प्रगाढ़ हैं। उसका, पूरे का पूरा मनुष्य जाति का अचेतन मन अतीत से भलीभांति परिचित है इसलिए लाख उपदेश देने पर भी आदमी पीछे लौटने को राजी नहीं हो सकता। आदमी की खोज आगे जाती है। आगे ही खोज हो सकती है और आगे खोज नहीं हो पाती क्योंकि हम हमेशा पीछे की तरफ देखने में लीन हो जाते हैं। मनुष्यता आज तक ऐसे ही चलती रही है, जैसे किसी कार के सामने प्रकाश न लगा हो, कार के पीछे प्रकाश लगा हो। कार तो आगे चलती है और प्रकाश पीछे पड़ता है, तो सिवाय दुर्घटना के और कुछ भी होने की संभावना नहीं। आदमी चलता आगे है और देखता पीछे है। इसलिए रोज-रोज दुर्घटना होती है और जितनी दुर्घटना होती है उतना ही वह और पीछे देखने लगता है, कि पीछे के दिन अच्छे थे। वहां दुर्घटना कभी भी नहीं होती थी। और जितना वह ज्यादा पीछे देखता है आगे का जीवन दुर्घटना से और भरता जाता है। अतीत की तरफ देखने वाले लोग मनुष्य का निर्माण नहीं कर रहे हैं।

लेकिन अतीत की तरफ देखने वाले लोग बहुत भले मालूम होते हैं। और वे बाधा बन रहे हैं। वे रुकावट डाल रहे हैं। उस चिंतन में जिस दिन मनुष्य के नये विकास की दिशा में सोचना शुरू करते हैं। पहली बात तो यह है कि अतीत कोई स्वर्ग था, यह सरासर झूठ है। अतीत कोई स्वर्णयुग था,यह सपने की बात है, कविताओं की, सत्य नहीं है। और दूसरी बात कि अतीत की तरफ निरंतर देखने के कारण वह मनोभूमिका नहीं बन पाती कि हम भविष्य की तरफ देखें और जो कुछ भी किया जा सकता है वह सिर्फ भविष्य में ही किया जा सकता है। अतीत में कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो भी संभावना है करने की; वह भविष्य में है। और भविष्य में कुछ भी करने में हम तभी समर्थ हो सकते हैं जब अतीत से हमारा मोह कम हो जाए। जितना हम अतीत की ओर देखते हैं उतना ही उस राष्ट्र, उस व्यक्ति की आत्मा वृद्ध और बूढ़ी होती चली जाती है। बच्चे

भविष्य की तरफ देखते हैं, बूढ़े अतीत की तरफ देखते हैं। बूढ़ों के सामने मौत के अतिरिक्त कोई भविष्य नहीं होता। बच्चों के पास कोई अतीत नहीं होता। बच्चे भविष्य की तरफ देखते हैं। जो कौम अतीत की तरफ देखने लगती है वह धीरे-धीरे अपने हाथ से ही अपनी मृत्यु का आयोजन जुटा लेती है। वह बचपन खो देती है। वह जवानी खो देती है। वह बूढ़ी हो जाती है। हमारी कौम सैकड़ों वर्ष से बूढ़ी होकर जी रही है। और यह देश युवा नहीं हो सकता जब तक भविष्य की तरफ देखने की सामर्थ्य हम न जुटा लें। अतीत की तरफ जब तक हम बंधे हैं तब तक वह साहस, वह सामर्थ्य नहीं जुटाई जा सकती। इसलिए मैंने कहा कि आज जैसा मनुष्य है वह अतीत का फल है। अगर वह स्पष्ट हो जाए तो हम अतीत से मुक्त हो सकते हैं। फल को देखकर वृक्ष का पता चलता है। आज के आदमी को देखकर पूरे अतीत का पता चल जाना चाहिए। और अगर इसे हम गौर से देखें तो आज का मनुष्य निंदा के नहीं, दया के योग्य है। यह हजारों साल की गलत संस्कृति का फल भाग रहा है। हजारों साल की गलत सभ्यता के आधारों का परिणाम भुगत रहा है। यह आदमी घृणा के और निंदा के योग्य नहीं; दया के योग्य है। जो हजारों साल से मनुष्य के जीवन का ढांचा रखा गया था उस ढांचे ने उसकी यह हालत कर दी है। हालांकि एक दो दिन में संस्कृतियों के फल नहीं आते, संस्कृतियों के फल आने में हजारों वर्ष लग जाते हैं। इसलिए महावीर जो आधार रखेंगे राम जो आधार रखेंगे उनके सामने उसका फल स्पष्ट नहीं हो सकता।

उसके फल स्पष्ट होने में हजारों वर्ष लग जाएंगे और जब हजारों वर्ष बाद फल आएगा तब हमें ख्याल भी नहीं होगा कि किसने आधार रखे थे और क्या फल आए। अभी गांधी ने आधार रखे थे। रोज-रोज फल आने शुरू हो गए। दो, चार सौ पांच सौ वर्षों में पूरे फल हमारे सामने होंगे और तब तय करना मुश्किल होगा कि पांच सौ पहले गांधी पर हम जिम्मा डालें। गांधी अलग पीछे बच जाएंगे। खयाल भी नहीं आएगा। संस्कृति की यात्रा लंबी है। और उसे यह स्मरण भी नहीं होता कि कौन सी चीज क्या परिणाम लाती है।

मैं कुछ बातों पर विचार करना चाहता हूं ताकि खयाल आ सके कि हमने कैसे मनुष्य को विकृत कर दिया। और खयाल आना और भी मुश्किल हो जाना है जब हम अच्छे अच्छे सिद्धांतों के आधार पर मनुष्य को विकृत होने की व्यवस्था करते हैं। जब अच्छे शब्दों की आड़ होती है और साधु संतों का प्रभाव होता है तब और भी कठिन हो जाती है खोज करनी कि आदमी की विकृति के आधार किसने रखे? आज तक के धर्मों और संस्कृति के सारे आधार, दमन के आधार रहे हैं सप्रेशन के आधार रहे हैं। और जो आदमी पैदा हुआ है वह तीन हजार वर्ष के दमन का परिणाम है। लेकिन खोज पाना बहुत कठिन है। आज सड़क पर एक युवक एक स्त्री को धक्का दे रहा है तो यह खोज पाना कठिन है कि तीन हजार वर्ष की ब्रह्मचर्य की शिक्षा का यह फल हो सकता है। यह खयाल में भी आना कठिन है। इस तरफ दृष्टि भी जानी कठिन है। क्योंकि ब्रह्मचर्य का कहां ऊंचा सिद्धांत और कहां नंगी स्त्रियों की तस्वीरें, चित्र, फिल्में, कहानियां कविताएं, कहां लड़के एसिड फेंकते हुए लड़कियों को धक्का देते हुए, गालियां देते हुए? कहां ये लड़के? कहां यह गंदा युग? कहां यह कामुकता से भरा हुआ सारा साहित्य और कहां कामुकता से भरा हुआ सारा साहित्य और कहां ऋषि मुनियों की ब्रह्मचर्य की बातें इनमें क्या संबंध? मैं आपसे कहना चाहता हूं इतने अनिवार्य संबंध है। जो देश भी बहुत दिन तक काम की; यौवन की; निंदा करेगा और दमन करेगा, उस देश में आज नहीं कल यौवन का विक्षिप्त विस्फोट होना निश्चित है। जो देश भी सेक्स के संबंध में शत्रुता का भाव लेगा, आज नहीं कल उसका पूरा चित्त सेक्सुअल हो जाने को मजबूर है। जब यह हो जाएगा तब हम चिल्लाएंगे और गाली देंगे और तब हम कहेंगे कि आदमी गलत हो गया है। और कभी हम भूल कर भी नहीं सोच पाएंगे कि इसको गलत करने में अच्छे तथाकथित लोगों का हाथ है। ब्रह्मचर्य की शिक्षा मनुष्य जाति को कामुक बनाने के सिवाय और कहीं भी नहीं ले गई और अगर यह शिक्षा जारी रहती है तो सारी पृथ्वी कामुकता का एक नग्न नृत्य हो जाने को है। और जुम्मा उन लोगों पर नहीं होगा जो गंदी फिल्में बनाते हैं। उन लोगों पर नहीं होगा जो गंदी किताबें लिखते हैं। जुम्मा उन अच्छे लोगों पर होगा जो स्त्री को नरक का द्वार बतलाते हैं। जुम्मा उन अच्छे लोगों पर होगा जिन्होंने काम की धारणा को न तो वैज्ञानिक रूप से स्थापित होने दिया, न मनुष्य की काम वासना के लिए स्वस्थ दिशाएं खोजीं, न मनुष्य के चित्त के विकास के लिए नैसर्गिक है? क्या स्वाभाविक है? उसकी कैसे सम्यक अभिव्यक्ति हो? वे उसके कोई आधार नहीं रखे, जिन्होंने आमूल रूप से यौन की निंदा की। उन लोगों के ऊपर जुम्मा होगा, सारे मनुष्य-जाति यौनग्रस्त होती चली जा रही है। और जितना मनुष्य यौन

ग्रस्त होता है, उतना ही हम ऋषि मुनि की पुकार करते हैं, कि वापस लौट चलो, ऋषियों के चरणों में। ब्रह्मचर्य की शिक्षा जोर से दो। लोगों को समझाओ कि यह काम पाप है, अनीति है। व्यक्ति को मुक्त करो वासना से, हम उतना ही ज्यादा इस नीति शिक्षा को दोहराते हैं और हमें पता नहीं कि इसी शिक्षा का यह फल है। जितना ही आप दोहराइएगा यह फल उतना ही विषाक्त होता चला जाएगा। ऐसे एक दुश्चक्र में आदमी जी रहा है। एक विशीयस सर्किल खड़ा हो गया है। जो रोग का कारण है, उसे हम बीमारी समझ रहे हैं। जिस बात को मनुष्य के मन में जितना दबाने का उपाय किया जाए वह बात उतना ही बल अर्जित करती है और एक दिन प्रकट होने की प्रतीक्षा करती है। जिस बात को आदमी के भीतर दबाया गया वही बात उससे ज्यादा विकृत होकर प्रकट होनी शुरू हो गई है। अभी हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा कि लड़कों का पता नहीं है। वे आएंगे कि नहीं आएंगे कोई पता नहीं क्योंकि आपने वहां तख्ती लगा दी है। कि मैं यहां बोलूंगा आप आएं। इससे भी ज्यादा उचित यह होना कि हाल के बाहर एक तख्ती लगा दी जाती कि यहां भीतर कोई भी न आए। यहां आज आना मना है तो जो विद्यार्थी नहीं आए हैं जरूर आ गए होते। फिर इस विश्व विद्यालय के पूरे केंपस में इतने संयमी विद्यार्थी खोजना कठिन हो जाता। जो इस हाल की तरफ न आता। मुश्किल होता। और अगर कोई विद्यार्थी संकोच में लाज शर्म में बिना झांके इस हाल से निकल भी गया होता तो बड़ी बेचैनी में पड़ जाता। कक्षा में बैठता, लेकिन पढ़ नहीं पाता। मन उसका इसी भवन के आसपास डोलता रहता। सांझ होते-होते उसे यहां आना पड़ता। सौ में से निन्नयानबे मौके ऐसे हैं कि वह आता। एक मौका ऐसा भी है कि वह किसी भय, किसी संकोच, किसी डर से न आता तो रात किसी सपने में इस भवन में अवश्य हो आता। हम निषेध करते हैं और निमंत्रण बन जाता है। हम रोकते हैं और बुलावा हो जाता है। हम कहते हैं नहीं और हां का प्रतिकार पैदा होता है। आदमी का मन दमन को स्वीकार करने को न कभी राजी था और न राजी है। दमन, निषेध, नकार, आकर्षण को जन्म देते हैं।

एक फकीर था नसरुद्दीन। एक दिन सांझ अपने घर से बाहर निकलता था। किन्हीं मित्रों से मिलने जा रहा था कि देखा कि घोड़े पर सवार उसके दूसरे गांव का एक बहुत प्यारा मित्र आ गया है। उसने अपने मित्र से कहा कि जमाल! तुम रुको, मैं दो-तीन जगह जाऊंगा जरूरी है वहां जाना। किसी को समय दिया है। वहां जाता हूं। घंटे भर बाद लौटूंगा। दुख तो मुझे बहुत हो रहा है कि वर्षों के बाद तुम आए और मैं तुमको घर में अकेला छोड़कर जाऊं। लेकिन मजबूरी है जल्दी से जल्दी लौट आऊंगा। उसके मित्र ने कहा कि अगर कोई एतराज न हो तो मैं भी साथ चला चलूं। रास्ते में बात भी हो लेगी। लेकिन मेरे कपड़े धूल से भरे हैं। अगर तुम्हारे पास दूसरे कपड़े हों तो में उन्हें ऊपर से डाल लूं और तुम्हारे साथ हो लूं। नसरुद्दीन ने वक्त जरूरत के लिए एक अच्छा कोट, कमीज, पगड़ी बचा रखी थी। जल्दी से निकाल लाया। मित्र ने कपड़े पहन लिए। मित्र जब चलने को साथ तैयार हो गया तब नसरुद्दीन को भूल पता चली। मित्र तो बहुत शानदार मालूम होने लगा फिर उसे कष्ट और भारी दुख हुआ कि कपड़े तो मेरे हैं और शान इसकी बन गई। उसके मन को समझाया और दबाया कि ये भी क्या फिजूल बातें सोचते हो? तुम्हारा इतना प्यारा मित्र है? क्या कपड़े तुम्हारे क्या उसके? बड़ी ज्ञान की बातें की थीं। क्या कपड़े किसी के होते हैं? कपड़े में क्या मोह? समझा बुझा कर मित्र के घर पहुंचा। मित्र से बात होती थी लेकिन बात ऊपर-ऊपर होती थी। भीतर उसे बार-बार कपड़ा ही दिखाई पड़ता था। और बार-बार वह अपने को समझाता कि कपड़े भी क्या किसी के होते हैं? कैसा पागल हो गया है तू नसरुद्दीन? तू इतनी आत्मा की बातें करता था और कपड़ों पर अटका है? अक्सर आत्मा की बातें करने वाले कपड़ों पर अटके होते हैं। लेकिन यह उसे पता नहीं । उसने समझा बुझा कर रोक-टोक कर कपड़ों की बात भीतर छिपा ली। आगे मित्र को लेकर जिस परिवार में गया तो उन्होंने पूछा कि कौन हैं? स्वभावतः वह इतना शानदार मालूम पड़ रहा था। नसरुद्दीन को फिर खयाल आया कि वे ही कपड़े, अन्यथा कौन पूछता इसको? लेकिन उसने कहा कि क्या मैं कपड़े की बात करता हूं? छोड़ो? कपड़ों की बात नहीं करनी है। फिर उन्होंने पूछा परिचय? आप कौन हैं? तो उसने परिचय दिया कि मेरे मित्र हैं बड़े पुराने मित्र हैं। नाम है जमाल! रह गए कपड़े सो कपड़े मेरे हैं। कह गया तब खयाल आया कि यह क्या हो गया? बहुत घबड़ा गया। पसीना निकल आया। मित्र भी, घबड़ा गया। परिवार के लोग भी हैरान हुए कि ये कपड़े मेरे हैं। बड़ी ग्लानि अनुभव हुई। सभी दमन करने वालों को निरंतर ग्लानि का अनुभव होता है। निरंतर अपराध का, गिल्ट का बड़ा अपराधी लगा। बाहर निकलते ही क्षमा मांगने लगा कि माफ कर दो। पश्चात्ताप करने

लगा कि ये क्या बातें निकल गइ□? क्यों निकल गइ□? कैसे मेरी जुबान धोखा दे गई? जुबान धोखा नहीं दी थी, धोखा वह खुद दे रहा था। जुबान ने तो वही कह दिया था जो सच था। जो भीतर था। वही निकल आया, धोखा वह दे रहा था जुबान नहीं। कहने लगा कि कैसी भूल हो गई? कैसी जुबान से क्या बात निकल गई? जो नहीं कहनी थी, कोई खयाल ही नहीं था कहने का। मित्र भी बहुत हैरान हुआ। उसने कहा कि मैं भी बहुत हैरान हो गया। क्या बात है? लेकिन चलो मैं तो खुद ही कह रहा था कि बाहर चलकर तुमसे कहूंगा कि तुमने क्या किया? लेकिन तुम खुद ही क्षमा मांगते हो छोड़ो जाने दो। मित्र ने तो जाने दिया लेकिन नसरुद्दीन कैसे जाने देता? दूसरे घर फिर जाना था। फिर वही कपड़े अब केवल कपड़े न थे। दोहरा हो गया था मामला। कपड़े भी और कपड़े की बात का अपराध भी। अब मन और भी द्वंद्व में पड़ गया था। दमन की वृति मनुष्य को अंततः और कानफिल्कट में ले जाती है अब मन द्वंद्व में था। वे कपड़े याद आने लगे और पश्चात्ताप भी याद आने लगा। बात तो कर रहा था लेकिन बात में मन नहीं था। भीतर द्वंद्व था। मंदिरों में पूजा करिए। ऊपर प्रार्थना चलेगी, भीतर द्वंद्व है। सारी प्रार्थना झूठी है। गीता पढ़िए, उपनिषद पढ़िए, कुरान और बाईबिल पढ़िए, जब भीतर द्वंद्व है सब पढ़ना व्यर्थ है। लेकिन ऊपर से मीठी-मीठी बातें करता चला गया। जितना ही भीतर वह द्वंद्व गहरा होने लगा ऊपर बातें उतनी ही मीठी होने लगीं। मीठी बातों से हमेशा सावधान होने की जरूरत है। भीतर बहुत कड़वाहट न हो तो आदमी ऊपर बहुत मीठी बातें नहीं करता। भीतर शत्रुता न हो तो मित्रता के लिए बहुत चर्चा करने की आवश्यकता नहीं होती। भीतर घृणा न हो तो मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, इस बेवकूफी को बार-बार दोहराने का कोई सवाल नहीं उठता। दूसरे मित्र के घर पहुंचे, फिर वही। पहुंचने पर जैसे ही उसने कपड़े देखे, मित्रों की आंखें, उसके कपड़ों पर उलझ गइ□। नसरुद्दीन पीछे छूट गया। किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। फिर बेचैनी कि वही कपड़े। लेकिन अब उसने कहा कि मुझे यह नहीं कहना है कि कपड़े मेरे हैं। अपने ऊपर संयम रखना है। संयम रखने वालों के भीतर क्या छिपा है, इसका हमें कभी भी पता नहीं चलता। संयम रखना इसलिए पड़ता है कि भीतर रोग है। संयम से रोग मिटता नहीं केवल दबता है। और दब कर बलवान हो जाता है। दबा लिया है उसने। फिर-फिर बात उठी कि कौन है? उसने परिचय दिया। अपने को रोकते हुए कि यह नहीं कहना है कि कपड़े मेरे हैं। उसने कहा कि मेरे मित्र हैं जमाल। मेरे प्यारे मित्र हैं। बहुत दिन बाद आए हैं। सोचा इन्हें भी साथ ले चलूं। रह गए कपड़े कपड़े मेरे नहीं उन्हीं के हैं। कपड़े मेरे नहीं उन्हीं के हैं सब घर के लोग हैरान हो गए कि यह बताने की क्या जरूरत थी कि कपड़े उन्हीं के हैं। कुछ शक होता है। मालूम नहीं किसके हैं? नसरुद्दीन के हैं? मित्र भी घबड़ाया कि यह बात तो फिर लौट आई है। लेकिन उलटी होकर लौटी है। जब बातें उलटी होकर लौटती हैं तो लोग समझते हैं कि दूसरी बातें हो गइ□। जब वेश्या के घर जाने वाला संन्यासी हो जाता है तो लोग समझते हैं कि मामला दूसरा हो गया। मामला वही है जो वेश्या के घर में जाता था वही वेश्या के घर से भागने को मजबूर भी करता है। जब आदमी धन को छोड़कर भागने लगता है तो यह मत सोच लेना कि धन को इकट्ठा करने वाला कोई दूसरा आदमी था। धन के प्रति लार टपकाता है जो मन, वही धन को छूने से भी इनकार करने लगता है कि मैं छुऊंगा भी नहीं। मनुष्य का मन अतियों में डोलता है। एक्सट्रीम में चलता है। कहा था कि कपड़े उसके हैं। तो दूसरी अति ने मन पकड़ा। दमन किया जोर से तो मन ने कहा कि अब यह कहो कि कपड़े उसी के हैं मेरे नहीं। बाहर निकलता तो अब अपराध और गहरा हो गया था। दमन करने वालों के दमन की वृति रोज गहरी होती चली जाती है। वे निरंतर दीन-हीन आत्मा हो जाते हैं। हर बार ली हुई वृति हर किया हुआ दमन छूटता है और पश्चात्ताप का अंधेरा पीछे छूटता है। पश्चात्ताप और जोर से दमन करने को कहता है। बाहर आकर जमाल के वह पैर छूने लगा कि क्षमा कर दो। जमाल ने कहा कि अब मैं तीसरे घर तुम्हारे साथ जाने को नहीं। यह क्या पागलपन है? क्या कपड़ों के अतिरिक्त तुम्हें कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है? अगर तुमने ऐसा घर पर ही कहा हो तो मैं अपने दीन-हीन कपड़े पहनकर ही चला आता। ये कपड़े तो अड़चन बन गए। मित्र ने कहा न मालूम क्या हो गया है? मैं खुद अपने होश में मालूम नहीं पड़ता। कभी सोचा भी नहीं था कि ऐसी बातें मेरे मुंह से निकल सकती हैं। लेकिन शायद पहली बार गलती हो गई थी। इसलिए सुधारने के लिए दूसरी बात मुंह से निकल गई। लेकिन अब बात खतम हो गई है छोड़ो। अब कपड़े की बात ही नहीं उठानी है। मित्र ने कहा, वचन दो, कसम खाओ, कि अब कपड़े की बात नहीं उठाओगे, तो साथ चलता हूं नहीं तो वापस लौट जाता हूं। उसने कसम खाई कि मैं कसम खाता हूं कि कपड़े की बात बिलकुल नहीं उठानी है। कपड़े की बात ही नहीं

करनी है। फिर वे तीसरे घर में गए जो कसम खाने वालों की हालत है वही उसकी हो गई। कसम खा ली है कि कपड़े की बात नहीं उठानी है। और मन है कि सिवाय कपड़ों के दूसरी बात ही नहीं करता। मन कपड़ों की कपड़ों से भर गया और कसम कि कपड़ों की बात नहीं उठानी है। वह तीसरे के घर पहुंच गया। तो उसे कुछ नहीं दिखाई पड़ रहा था, कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था। भीतर बैठा ज्वालामुखी ऊपर वे कपड़े बोलने को आतुर हो रहे थे। वे कपड़े कुछ सुनना चाहते थे, कुछ कहना चाहते थे। अब कपड़े बहुत बलवान हो गए। जाते ही दिखाई पड़ा कि आंखें कपड़ों पर हैं दूसरों को भी। दरअसल में जब आपकी आंख कपड़े पर हो तो आपको सारी दुनिया की आंख कपड़े पर ही दिखाई पड़ेगी। ये साधु-संन्यासियों को रास्ते पर लगे हुए नंगे पोस्टर अकारण ही दिखाई नहीं पड़ते। ये जो साधु संत हैं ये अश्लील पोस्टर और अश्लील साहित्य के विरोध में आंदोलन अकारण ही नहीं चलाते। इन्हें क्यों दिखाई पड़ते हैं ये पोस्टर? इन्हें क्यों ये साहित्य दिखाई पड़ता है? इनकी निरंतर नजर औरत की नग्नता पर लगी है। उससे बच रहे हैं। उससे छूट रहे हैं। उससे भागना चाह रहे हैं। तो जगह-जगह वही नंगी औरत दिखाई पड़ रही है। उसे कपड़े ही कपड़े दिखाई पड़ने लगे थे। मित्र ने पूछा कौन हैं ये? अब वह बहुत घबड़ा गया। बहुत संभल कर बोला और कहने लगा कि मेरे मित्र हैं—जमाल। बहुत पुराने मित्र हैं। बड़े प्यारे मित्र हैं। एक क्षण रुका। और फिर जैसे कोई चीज फूट पड़े उसने कह दिया रह गए कपड़े, सो कपड़ों की बात ही नहीं उठानी है। किसी के भी हो सकते हैं। कसम खा ली है कि कपड़ों की बात ही नहीं उठानी है। आप पूछना ही मत कि कपड़े किसके हैं? किसी के भी हो सकते हैं? कपड़ों से क्या लेना-देना है। सवाल आदमी का है। यह सप्रेसिव माइंड, वह दमन करने वाला चित्त, अंततः वही पहुंचा देता है। सारी मनुष्यता को हमने यहां ही पहुंचा दिया है। हजारों वर्षों की दमनकारी शिक्षा ने मनुष्यता के सारे चित्त को रुग्ण और विक्षिप्त कर दिया है। आज जो विस्फोट हो रहे हैं उनके लिए गाली मत देना। इस आदमी को जो आज है यह बेचारा विक्टिम है। यह शिकार है हजारों साल का। इसका कोई कसूर नहीं। यह दयनीय है, यह फंस गया है चक्र में। हजारों साल की शिक्षाओं ने इसके सारे चित्त को विक्षिप्त कर दिया है। हम उसे रोज-रोज इन्हीं शिक्षाओं को देकर विक्षिप्त किए चले जा रहे हैं। पुराना मनुष्य गलत सिद्ध हुआ। उसका सारा व्यक्तित्व कामुक हो गया। उसका सारा व्यक्तित्व दब गया। वह जो भी चाहता था, जो भी सहज था, सब टूट गया और जटिल हो गया। और उस जटिलता ने क्या-क्या परिणाम लाए हैं। आज आंकना भी बहुत कठिन हो गया है। मेरी समझ में है कि दुनिया कभी भी युद्धों से मुक्त नहीं हो सकेगी, अपराधों से, हत्याओं से आत्म हत्याओं से, जब तक हम मनुष्य के लिए गैर दमनकारी नीति नहीं खोज लेते। पिछले दो महायुद्धों में यह अनुभव हुआ। पहला महायुद्ध चला, कोई साढ़े तीन करोड़ लोगों की हत्या हुई। जितने दिन युद्ध चला उतने दिन बड़े आश्चर्य की घटना घटी। सारे यूरोप में वह घटना किसी की कल्पना में भी नहीं थी कि घटेगी? वह घटना यह घटी कि युद्ध के चलते समय हत्याएं कम हो गइ? चोरियां कम हो गइ, लोग कम पागल हुए, यह तो बड़ी हैरानी की बात थी। युद्ध से पागलपन का क्या संबंध? लोग कम पागल हुए, आंकड़ा नीचे गिर गया पागलों का, और मनोवैज्ञानिक परेशान हो उठे कि पागलों से कहीं युद्ध चलता है तो काशी में किसी के पागल होने से क्या संबंध? फिर दूसरा महायुद्ध आया और बड़ी हत्या हुई, कोई हत्या के आंकड़े दुगुने हो गए। साढ़े सात करोड़ हत्या हुई। पागलों के, हत्यारों के, आत्महत्या करने वालों के आंकड़े उसी अनुपात में दुगुने नीचे गिर गए। तब कुछ को-रिलेशन कुछ अंतर-संबंध दिखाई पड़ा। तब यह दिखाई पड़ा कि जब युद्ध चलता है तब सामूहिक रूप से पागलपन के निकलने की सुविधा मिल जाती है तो व्यक्तिगत रूप से पागल होने की जरूरत नहीं रह जाती। जब सामूहिक रूप से कोई रोग फैलता है तो व्यक्तिगत रूप से निकास अलग से खोजने की जरूरत नहीं रह जाती। जब यूनिवर्सल मेडनेस हो तो प्राइवेट मेडनेस की जरूरत क्या है? जब इतने जोर से हत्या चल रही हो तो मेरा जो हत्या करने का मन है वह तृप्ति अनुभव करता है। जब इतने जोर से सब कुछ विक्षिप्त हो गया हो तो वह जो मेरा तनाव है इस विक्षिप्तता के साथ तादात्म्य जोड़ लेता है, और मुक्त हो जाता है। इसीलिए रास्ते पर भी दो आदमी लड़ते हों तो आप अकारण खड़े नहीं हो जाते; हजार काम छोड़कर। दो आदमियों को लड़ता देखकर आपके भीतर कोई तृप्ति मिलती है। युद्ध चलता है तो लोग पांच बजे सुबह उठकर जो कभी आठ बजे के पहले नहीं उठते थे, अखबार खोजने लगते हैं। क्या पागलपन है? क्यों अखबार की आपको जरूरत पड़ गई है सुबह?

युद्ध की खबर, हिंसा की खबर, आग्नेय बम, एटमीय हाइड्रोजन बम, आपके भीतर जो विध्वंस का तीव्र भाव है उसको

तृप्ति देते हैं। आदमी के भीतर इतना विध्वंस का भाव क्यों है? आदमी तोड़ने को इतना आतुर क्यों है? आदमी क्या तोड़ना चाहता है? अगर ठीक से हम समझें तो आदमी अपने भीतर जो दमन है उसको तोड़ना चाहता है। लेकिन उसकी सूझ में कुछ नहीं आता और वह कुछ भी तोड़ने लग जाता है। लड़के बसें जला रहे हैं, मकान तोड़ रहे हैं, शिक्षकों पर पत्थर फेंक रहे हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि न उन्हें शिक्षकों से संबंध है, न बसों से न मकानों से। लड़कों की सहज काम वृति का अति दमन उन्हें तोड़ने को आतुर कर रहा है। और वे कुछ भी तोड़ रहे हैं। और वे कुछ भी तोड़ते रहेंगे। आपकी शिक्षाओं का कोई फल होने को नहीं है। जब तक हम व्यक्ति के लिए सहज,नैसर्गिक अदमनकारी, नोन सप्रेसिव कोई व्यवस्था नहीं खोज लेते। अब तक का सारा मनुष्य दमन के पत्थर के नीचे दबा हुआ मनुष्य था। इसलिए आप जानकर हैरान होंगे कि तीन हजार वर्षों में चौदह हजार छह सौ युद्ध हुए हैं। और न महावीर समझा सकते हैं न अहिंसा। न बुद्ध, न गांधी। क्योंकि महावीर, बुद्ध और गांधी अहिंसा को समझाते रहे। इससे कुछ होने वाला नहीं। सिर्फ वही आदमी लड़ने को अनातुर होता है जिस आदमी के भीतर द्वंद्व है। और दमन है वह हमेशा तोड़ने को, मिटाने को, फोड़ने को, आतुर होता है। आतुरता व्यक्तिगत रूप से भी निकलती है। और हर दस पंद्रह वर्षों में इतनी घनीभूत हो जाती है मनुष्य की आत्मा पर, कि सामूहिक निकास होना अत्यंत जरूरी हो जाता है। युद्ध होते रहेंगे। जब तक सप्रेसिव मोरेलिटी है। जब तक दमनकारी नीति है तब तक युद्ध कभी भी बंद नहीं हो सकते। कोई शिक्षा अहिंसा की किसी अर्थ की नहीं है। आदमी को नये आदमी को—अगर पैदा करना है तो केंद्रीय सूत्र मैं आपसे कहना चाहता हूं और वह यह है, आज तक का आदमी दमन की नीति पर खड़ा है। वह आदमी गलत था। नया आदमी पैदा करना है।और अगर आप पैदा नहीं करते तो एक बात निश्चित है कि पुराना आदमी तो मरेगा और उसके साथ पूरी मनुष्यता ही मरेगी। क्योंकि नया आदमी वही होगा जो जी सके आगे। वे ही दमनकारी चित्त अंततः हाइड्रोजन बम और सुपर बम पैदा कर लिए वही दमनकारी चित्त वहां पहुंच गया है कि हम सारे जीवन को ही नष्ट कर देंगे। जीव के प्रति इतनी तृष्णा, इतनी घृणा, इतना क्रोध मनुष्य के भीतर इकट्ठा हो गया है कि हम यूनिवर्सल स्यूसाड के लिए तैयार हो गए हैं। हम सार्वजनिक रूप से जागतिक आत्महत्या कर लेंगे। लेकिन यह जीवन जीने जैसा नहीं रह गया। इसे हम खत्म ही कर लेंगे। आदमी के चित्त में पांच हजार वर्षों में हमने इतना रोग इकट्ठा कर दिया है कि अब वह कहता है कि हम मिट ही जाएंगे। अब जीने का कोई अर्थ नहीं। जीने का सारा आनंद हमने छीन लिया है। जीने का सारा रस छीन लिया। जीने का सारा अर्थ छीन लिया। और हम समझ रहे हैं हजारों वर्षों से कि जीवन असार है। जीवन दुख है। जीवन पाप है। और एक ही लक्ष्य बता रहे हैं आदमी को मोक्ष। एक ही लक्ष्य बता रहे हैं कि किसी तरह जीवन के आवागमन से मुक्त हो जाओ। क्या पागलपन की बातें हम आदमी को समझा रहे हैं। जीने को जीने की कला जीवन कैसे जीयें, यह हम नहीं सिखला रहे हैं। जीवन कैसे छोड़ें अगर इस मोक्षवादी या ठीक शब्दों में कहें तो मृत्युवादी संस्कृति का, और आदमी की इन शिक्षाओं का यह अंतिम फल हुआ हो कि आदमी ने सोचा हो कि हम सभी लोग इकट्ठे मोक्ष को क्यों न चले चलें। अलग-अलग बहुत हो चुका। इससे जगत चक्र कभी खाली नहीं होता और संसार का चक्र चलता ही रहता है। एक-एक आदमी अगर मुक्त होता रहा, एक-एक बूंद समुद्र की अगर लोप होती रही तो अनंतकाल तक करोड़ों आत्माएं कष्ट ही भोगती रहेंगी। अब हम कोई ऐसी व्यवस्था कर लें सामूहिक मुक्ति की। यह सारा युद्ध और जो अब यह समग्र युद्ध हमारे सामने खड़ा हुआ है मनुष्य को इसी मानसिक दमन की वृति का परिणाम है। इतने दिनों के मानसिक दबाव का अब अंतिम विस्फोट होने को है। पुराना मनुष्य अर्थात दमनयुक्त। नया मनुष्य अर्थात, निर्सग स्वभाव, सहज, नये मनुष्य के जन्म की दिशा का सूत्र है। हम मनुष्य के सहज जीवन की व्यवस्था और जीवन की कला के संबंध में सोचें। सोचें कि मनुष्य जैसा है। गाली न दें मनुष्य को कि तुममें काम की वृति है। कि तुम पशु हो, कि तुम जानवर हो, कि तुम में मैथुन है कि तुम कुत्ते और पशुओं की कोटि के हो। इन गालियों से कुछ भी नहीं होता। आदमियों के भीतर जो है वह है, आपकी गालियों से कोई असर नहीं पड़ता। आपकी गालियों से स्वीकृति बंद हो जाती है और वह खुद भी बंद हो जाता है सोचना, कि क्या मेरे भीतर है। वह खुद को ही डिसीव करने में, और प्रवंचना में पड़ जाता है। एक ऐसी व्यवस्था देनी है जगत को, और मनुष्य की जाति को जो सहज है। वह स्वीकृत हो सके। उसकी निंदा न हो। उसका निषेध न हो। उस सहज को कैसे हम स्वस्थ दिशा में ले जा सकते हैं। उससे जो सूत्र विकसित हों, उन्हें हम गति दें। मनुष्य को सहज होने के लिए आयोजन करना है। मनुष्य

ने असहज होने के लिए भारी आंदोलन कर लिया है। और एक-एक आदमी विकृत हो गया है। नया मनुष्य निर्सग का मनुष्य होगा। वह इनकार नहीं करेगा कि मैं पशु हूं। बहुत कुछ है उसमें, जहां वह पशु से जुड़ा है। और उसके मन में स्वीकृति होगी कि ठीक है। लेकिन अपनी पशुता की स्वीकृति उसे पशु नहीं बना देती। अपनी पशुता की स्वीकृति अपनी सहजता की स्वीकृति उसे सरल बनाती है। निर्सगता के अनुकूल बनाती है। और सरलता के मार्ग से वह पशु का और मनुष्य का अतिक्रमण कर सकता है। सहज होकर वह उसको भी पा सकता है जो प्रभु है। जटिल होकर तो वह अपने को ही खो देता है। प्रभु को पाने का सवाल ही नहीं। दमन से, तो वह स्वयं से ही टूट जाता है वह परमात्मा से कैसे जुड़ सकता है। मेरी बात है आदमी को आदमी से जोड़ देना है। और आदमी को हम आदमी से तब तक जोड़ नहीं सकते, जब तक हमारे मन में जैसा आदमी है उसकी स्वीकृति न हो। अस्वीकृति तोड़ रही है। दमन तोड़ रहा है। विरोध तोड़ रहा है। नये मनुष्य की जन्म की दिशा है सहज की दिशा, सरल की दिया, स्वाभाविकता की दिशा। हम परमात्मा के खिलाफ लड़ रहे हैं। प्रकृति से, सहज से, निर्सग से लड़ना मूलतः ईश्वर का विरोध है। क्योंकि अगर ईश्वर का विरोध है। क्योंकि अगर ईश्वर को पसंद नहीं है प्रकृति और निर्सग तो कभी का उसे नष्ट कर देना चाहिए। लेकिन वह निरंतर प्रकृति को जन्म दिए चला जा रहा है। अनंत-अनंत रूपों में जीवन को विकसित किए चला जा रहा है। और हम मोक्ष के आकांक्षी हैं। मोक्ष का आकांक्षी अधर्मी है। जीवन की और परिपूर्ण जीवन की आकांक्षा चाहिए। अनंत जीवन की आकांक्षा चाहिए ऐसे जीवन की आकांक्षा चाहिए जिसका कोई अंत न हो। शायद मोक्ष का ठीक अर्थ यही होगा कि अनंत जीवन। जीवन की अनंतता। उसी में मैं एक हो जाऊं। लेकिन जो ऊर्जा हमारे भीतर प्रकट हो पा रही है उससे ही हम एक नहीं हो पा रहे हैं। उससे ही हमने दीवाल खड़ी कर ली है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं। पुराना मनुष्य गलत भित्ति पर खड़ा था। और अगर नई भित्ति हम मनुष्य को दे सकते हैं तो मनुष्यता बचाई जा सकती है। अन्यथा हम रोज-रोज पागल होते चले जाएंगे। हम रोज-रोज रुग्ण होते चले जाएंगे। हम रोज-रोज रुग्ण हो रहे हैं। आज अमेरिका में कोई पंद्रह लाख लोग रोज अपनी मानसिक चिकित्सा के लिए सलाह ले रहे हैं। यह सरकारी आंकड़ा है। और सरकारी आंकड़े कहीं भी सत्य नहीं होते। कम से कम तीस लाख लोग ले रहे होंगे। तब सरकार कहेगी कि पंद्रह लाख लोग चिकित्सा की सलाह ले रहे हैं। न्यूयार्क का अभी मनोवैज्ञानिक परीक्षण हुआ, केवल अठारह प्रतिशत लोग मानसिक रूप से स्वस्थ कहे जा सके। तो कितनी देर है कि जब पूरा आदमी पागल हो जाए। इतनी देर मैं यहां बोला। एक घंटे अगर, तो एक घंटे में पृथ्वी पर साठ लोगों ने आत्महत्याएं कर लीं। प्रति मिनट एक आदमी आत्महत्या कर रहा है। क्या हो गया है आदमी को? और जो आत्महत्या नहीं कर रहे हैं वे आत्महत्या से भी बदतर हालत में जी रहे हैं। सिर्फ साहस नहीं जुटा पाते मरने का। इसलिए जीए चले जा रहे हैं। लेकिन उनके जीवन का कुल जोड़ एक लंबी आत्महत्या से ज्यादा नहीं निकलेगा। एक ग्रेजुअल स्युसाइड है। जिस तीस चालीस वर्ष में पूरा कर पाते हैं। कोई आदमी एक मिनट में पूरा कर लेता है। यह जो स्थिति है क्या यह स्थिति नहीं प्रतीत होती कि बदली जाए। क्या यह ऐसा नहीं लगता कि आदमी नया हो? लगता है प्रत्येक को लगता है। लेकिन जैसे ही यह लगता है कि आदमी को बदलना है वैसे ही एक दूसरा भ्रांत तर्क मन में बैठा है कि पिछले जैसे आदमी को बना देना चाहिए। गुरुकुल खोलने चाहिए। यहां काशी विद्यापीठ में पढ़ाने की कोई जरूरत नहीं। यहां लड़के बिगड़ते हैं। लड़कियां साथ हैं। गुरुकुल खोलने चाहिए। वहां पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य की शिक्षा देनी चाहिए। वहां दूर रखना चाहिए स्त्री और पुरुष को ताकि वह पास न आ पाएं। युवकों को फिल्में नहीं देखने देना चाहिए। उपन्यास नहीं पढ़ने देना चाहिए। ये बेवकूफी की बातें उठती हैं जब बदलाहट का सवाल उठता है। इन्हीं बातों का यह फल है। और इन्हीं बातों को हम दोहराए चले जा रहे हैं। और जब भी सवाल उठता है तो चलो विनोबा के पास। चलो साधु-संतों के पास। उनसे पूछो कि क्या रास्ता खोजें। उन्होंने जो रास्ता बताया है वह आदमी को यहां ले आया है। और फिर उन्हीं के पास चलो। उनसे पूछो कि क्या रास्ता है। और वह दमन की, घुटने की, घोंटने वाली, गला घोंटू प्रवृति रोज चर्चित होती है। रोज प्रवचन होते हैं। उसी आदमी को रोज कसा जाता है। एक बड़े विद्रोह की जरूरत है। हम अतीत के पूरे मनुष्य के जीवन-आधारों को देख लें और खोजें कि हम कैसे हो गए हैं। उसे हो जाने में उन जीवन आधारों का क्या अंतर-संबंध है? उन आधारों की जगह नये आधार विचार करें, निर्मित करें। मैं नहीं कहता कि मैंने जो कहा वह आप

मान लें। यह पुराना आदमी कहता था। वह भी पुराना आधार है कि हम जो कहें वह मान लें। तीथ□कर जो कहें वह मान लें। मैं नहीं कहता कि मैंने जो कहा वह आप मान लें। तीथ□कर जो कहें हम जो कहें वह मान लें। तीथ□कर जो कहें वह मान लें। मैं नहीं कहता कि मैंने जो कहा वह आप मान लें। वह भी पुराना रोग है। मैं आपसे कहता हूं कि आप ने मेरी बात सुनी बड़ी कृपा की। इतना ही करें कि मैंने जो कहा उसे सोचें। हो सकता है कि जो मैंने कहा वह बिलकुल गलत हो सकता है। सत्य का किसी का कोई ठेका नहीं है। मैंने जो कहा वह बिलकुल गलत हो सकता है या हो सकता है कि दुनिया में जो लोग पागल हो गए हैं मैं भी पागल हो गया हूं। और जो बातें कह रहा हूं पागल की बातें हैं। पागल को कभी पता नहीं चलता कि पागल है। हो सकता है कि मुझे पता न हो कि मैं पागल हूं। इसलिए मेरी बातों को मान लेने की जरूरत नहीं। सिर्फ सोचने का निवेदन है। और अगर प्रतीत हो कि सब गलत है तो कचरे की तरह बाहर फेंकते चले जाएं। और अगर कुछ बात ठीक लगे तो चिंता करें खोजें। जब आप सोच कर किसी बात को पाएंगे कि वह सत्य है तो वह बात मेरी नहीं रह जाती है वह आपकी हो जाती है। मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। और अंत में सबके भीतर के परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

सर्व सेवा संध, राजघाट, वाराणसी

दिनांक 13 अगस्त, दोपहर

3.30

एक भाई ने पूछा कि क्या आध्यात्मिक और लौकिक जीवन भिन्न-भिन्न हैं या एक हैं? ये अब भिन्न-भिन्न माने गए हैं, बल्कि विरोधी माने गए हैं। जो लौकिक को छोड़े वही आध्यात्मिक हो सकता है। लेकिन यह मान्यता बिलकुल ही शत-प्रतिशत भ्रांत और गलत है। आध्यात्मिक और लौकिक जीवन विरोधी तो हैं ही नहीं, भिन्न-भिन्न भी नहीं। आध्यात्मिकता लौकिक जीवन को सम्यक रूप से जीने से उपलब्ध होने वाला गुण है। वह कोई जीवन नहीं है। वह जो लौकिक जीवन को ठीक से जीना सीख जाता है उसे आध्यात्मिकता उपलब्ध होती है। जो लौकिक जीवन को ठीक से नहीं जी पाता है, उसे गैर आध्यात्मिकता उपलब्ध होती है। आध्यात्मिकता सुगंध है, लौकिक जीवन ठीक से विकसित हो तो अनिवार्यतः आ जाती है। इसलिए आध्यात्मिकता को कोई जीवन न समझे। वह लौकिक जीवन की ठीक से जीने की निष्पत्ति है। वह उसका फल है, विरोध तो बिलकुल नहीं है। लेकिन विरोध माना गया है और उसके कारण आध्यात्मिक जीवन पैदा भी नहीं हो सका। क्योंकि जो लौकिक जीवन के जीने के ढंग से ही निकलने वाली सुगंध थी, उसे हमने इस जीवन की विरोधी मान कर उसकी संभावना नहीं थी। अब तक यही समझा गया कि जिसे प्रभु की तरफ जाना है, उसे संसार को छोड़ कर ही जाना पड़ेगा और संसार छोड़ता सारी आध्यात्मिकता की पूरी प्रक्रिया हो गई। कि हम कितना संसार छोड़ गए। संसार छोड़ने से कोई प्रभु के पास नहीं जाता। संसार छोड़ने से मनुष्य और अहंकारी बनता है, लेकिन उन्हें कोई आध्यात्मिक जीवन उपलब्ध नहीं होता। जितना वह छोड़ता है, जितना त्याग करता है, उतना उसको लगता है कि वह छोड़ दिया और मन मजबूत और प्रगाढ़ एवं प्रबल होता जाता है। इसलिए संन्यासी के पास जितना प्रगाढ़ अहंकार होता है, उतना अहंकार साधारण गृहस्थ के पास कभी नहीं हो सकता है। हो भी नहीं सकता है। यही वजह है कि दुनिया के सारे धर्म एक-दूसरे के शत्रु से सिद्ध हैं। क्योंकि तथाकथित धार्मिक आदमी अहंकार से भरा है, उससे दूसरे की मित्रता, ऋषि-मुनि एक दूसरे से मिलने में भी असमर्थ हो गए हैं। अहंकार इतना प्रगाढ़ और मजबूत है। यह जो सारा का सारा हमारी मान्यता रही है कि हम लौकिक जीवन से विपरीत आध्यात्म को समझें, उसने अहंकारी जीवन पैदा किया, उसने आध्यात्मिक जीवन पैदा नहीं किया। मेरी वैसी समझ नहीं है। मैं मानता हूं कि लौकिक जीवन ही अकेला जीवन है। कोई और जीवन होता नहीं, न हो सकता है। गलत जी सकते हैं और ठीक जी सकते हैं लौकिक जीवन, यह दूसरी बात है। लेकिन लौकिक जीवन के अतिरिक्त कोई जीवन नहीं होता।

एक आदमी घर छोड़कर चला गया तो आप समझते हैं कि लौकिक जीवन छोड़ दिया। तो आश्रम बनाएगा, तो आश्रम में जीएगा और रहेगा। और लौकिक जीवन नई व्यवस्था से फिर गतिमान होगा। एक आदमी धन कमाना छोड़ देगा तो भीख मांगने का आयोजन करेगा और लौकिक जीवन यहीं से शुरू होता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि धन कमाना तो लौकिक जीवन है लेकिन दूसरे धन कमाते हैं तो उनसे मांगना लौकिक जीवन नहीं है। चोरी करना, लौकिक जीवन है,

लेकिन चोर से मंदिर बनवाना, मंदिर में दान लौकिक जीवन नहीं है। यह आध्यात्मिक जीवन है। लौकिक जीवन के बाहर से जीने का कोई उपाय नहीं है। खाएंगे तो, पीएंगे तो, उठेंगे तो, चलेंगे तो, लौकिक जीवन। तो लौकिक जीवन के बाहर जाइएगा कैसे? एक आदमी दुकान चलाएगा, दूसरा आदमी आंदोलन चलाएगा। और दुकान चलाने वाला आदमी जितना दुकान से बंधा होता है, आंदोलन चलाने वाले उस दुकान चलाने वाले से कम बंधे नहीं होते। पकड़ उतनी ही, जकड़ उतनी ही है, सुखी-दुखी उतने ही, आंदोलन सफल होता है तो सुखी होते हैं, आंदोलन सफल नहीं होता है तो दुखी होते हैं। दुकानदार दुकान चलती है तो सुखी होता है, नहीं चलती है, तो दुखी होता है। लेकिन लौकिक जीवन से जाइएगा कहां? जीवन मात्र लौकिक है।

तो सवाल कुल इतना ही रह जाता है कि लौकिक जीवन ठीक से जीया जाए या गलत ढंग से जीया जाए? ठीक से जीवन जीया जाता है, उसको मैं आध्यात्मिक कहता हूं। कैसे जो ठीक से जीता है लौकिक जीवन को, उसे मैं संन्यासी कहता हूं जो ठीक से नहीं जीता, उसे मैं संसारी कहता हूं। शायद ठीक से जीने वाला व्यक्ति न तो जीवन को छोड़ता है, न भाता है और जब उन्हें कोई जीवन छोड़ता या भागता हुआ दिखाई पड़ता है तो हम समझते हैं कि वह दौड़ रहा है। और भाग रहा है। एक आदमी हाथ में पत्थर लिए जा रहा हो और उसे हीरे दिखाई पड़ रहे हों और वह पत्थर वहीं गिरा दे तो हमें जिन्हें हीरे दिखाई नहीं पड़े, हम सोचेंगे कि उसने पत्थर का त्याग कर दिया। वह आदमी कोई त्याग नहीं कर रहा है, त्याग संभव ही नहीं। वह आदमी हीरे के लिए केवल हाथ खाल कर रहा है। महावीर घर छोड़ देते हैं। तो हमको लगता है कि महावीर संसार छोड़ गए। महावीर के लिए कोई वृहत्तर आनंद निमंत्रण दे रहा है जो सामने खड़ा है। और जिसे हम घर-द्वार कहते हैं। वह महावीर के लिए घर-द्वार रहा नहीं। महावीर के जीवन में एक अदभुत उल्लेख है। उनके पिता और मां जिंदा थे तो महावीर ने अपनी मां से आज्ञा चाही कि मैं आनंद की और बड़ी खोज में जाना चाहता हूं। तो उनकी मां ने कहा कि मेरे रहते संभव नहीं है कि मैं तुम्हें जाने दूं। तो मेरे जीते जी घर छोड़ने की कभी बात नहीं करना। मेरे लिए वह मृत्यु से भी ज्यादा दुखद है। तो महावीर का जीवन कहता है कि महावीर रुक गए। मां के जीते जी बाहर जाने की बात भी नहीं की। दो वर्ष बाद मां चल बसी। तो पिता को कहा कि मां ने कहा था कि मैं जब तक जीऊं तब तक बाहर जाने की बात मत उठाना। अब मैं वृहत्तर आनंद की खोज में जाना चाहता हूं। तो अब मैं जाऊं? पिता ने कहा कि मेरे जीते जी यह बात मत करो। फिर कुछ दिन बाद पिता भी चले गए। तो महावीर ने बड़े भाई से कहा कि मैं जाऊं? तो बड़े भाई ने कहा कि मेरे ऊपर दो-दो आघात हुए कि मां और पिता चले गए और तुम इस वक्त जाने की बात कहते हो। यह बात मत करो। तो फिर महावीर ने यह बात ही बंद कर दी। लेकिन साल छह महीने बीतते-बीतते घर के लोगों को पता चला कि महावीर घर में हैं, लेकिन हैं भी नहीं। उनका घर में होना न होना बिलकुल बराबर हो गया। उनकी घर में मौजूदगी गैर-मौजूदगी बराबर हो गई। घर में आप शरीर की वजह से आप थोड़े ही होते हैं। घर में होते हैं अपेक्षाओं की वजह से, आग्रह की वजह से, घर में होते हैं आप हर आदमियों के बीच में आड़ में खड़े हो जाते हैं। महावीर ऐसे हो गए कि जैसे हैं ही नहीं। किसी प्रयोजन से प्रयोजन न रहा। किसी बात का कोई आग्रह न रहा। जो होता था, होता था। जैसा कि महावीर उस घर में होते तो जैसा चलता था, वैसा चलने लगा। तो भाई ने और घर के लोगों ने सोचा कि महावीर तो घर से जा ही चुका है अब उसे रोकना व्यर्थ है। और उन्होंने उनसे क्या प्रार्थना किया कि आप एक अर्थ में हैं ही नहीं। तो हम आपको रोक कर भी क्या करें?अब आपको जहां होना हो आप वहां जाएं। तो महावीर चल पड़े। तो मेरी अपनी समझ यह है कि अगर उनके भाई उनसे यह न कहते तो महावीर कभी उस घर को छोड़ कर गए ही न होते, लेकिन जीने की व्यवस्था उन्होंने उस घर के भीतर खोज ली थी। कैसे जीना—अनाग्रही, अनासक्त, कैसे जीना, शून्यवत्, कैसे जीना कि जिससे हो ही नहीं, यह उन्होंने सूत्र खोज लिया था और वह घर में भी पूरा हो सकता है, वह जंगल में भी पूरा हो सकता है और बाजार में भी और दुकान में भी पूरा हो सकता है। ठीक से कैसे जीना वह सवाल है? कौन सा जीवन अख्तियार करना, वह सवाल ही भ्रांत है। इस संबंध में एक बहन ने पूछा है और किसी एक ने पूछा है। तो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि मन यदि अक्रिया को उपलब्ध हो जाए, तो प्रभु की उपलब्धि होती है। जीवन में ठीक से जीने का अर्थ है कि जैसे कर्म करना कि जैसे कि आप नहीं कर रहे हैं। भीतर अक्रिया हो और उस अक्रिया के केंद्र पर ही जीवन का सारा कर्म निर्मित हो, तो आपने ठीक से जीने की कला खोज ली है। आप आध्यात्म की तरफ विकसित हो जाने

वाले हैं। एक बैलगाड़ी चल रही है। चाक घूमता हुआ दिखाई पड़ता है, लेकिन शायद आपको खयाल नहीं हो कि चाक घूम रहा है इसलिए कि कील चाक के बीच में खड़ी हुई है और नहीं घूम रही है। तो यह जो कील की अक्रिया है, उस पर चाक की सारी क्रिया चल रही है। और कील की अक्रिया छूट जाए तो चाक की गति अभी टूट जाने वाली है। चाक वहीं ठहर जाएगी। कील की अक्रिया पर चाक की सारी क्रिया और चाक उसी वक्त तक कुशलता से चलेगा जब तक कील कुशलता से ठहरी हुई हो। अक्रिया और क्रिया में विरोध नहीं है। क्रिया के वृत्त परिधि को अक्रिया की कील पर ठहराया जा सकता है। आपका चित्त अक्रिया में हो और जीवन विराट क्रिया में, तो यह जो कला है वह एक दिन आध्यात्मिक सुगंध को जीवन में लाए बिना नहीं रहती। अकर्म नहीं है अध्यात्म में। ऐसा कर्म हो, जहां कर्ता विलीन हो गया है। ऐसा कर्म है, जहां करने वाले का अहंकार समाप्त हो गया। यह जो मैंने कल सुबह कहा कि मन जब अक्रिया में हो तो हम शांत और शून्य होते हैं। तब प्रभु का द्वार खुल जाता है। हमें मन की अक्रिया का कोई खयाल नहीं है, कोई पता नहीं है। हम तो इस भांति जीये चले जाते हैं कि चौबीस घंटे मन की क्रिया चलती रहती है। सो करके भी चलती रहती है, उठते भी चलती है, बैठ कर भी चलती है। जैसे एक आदमी चलता है और तब उसका पैर चले, यह तो समझ में आता है। वह बैठ जाए और बैठ कर पैर चलाता रहे तो हम कहेंगे कि वह पागल है। मन की जब जरूरत हो तो वह चले, वह समझ में आता है और जब जरूरत न हो तो वह मौन हो जाए। और जितनी मन की क्षमता बढ़ेगी, उतनी ही जब चलने की जरूरत होगी जब उतनी ही कुशलता और शक्ति पास में आएगी। एक आदमी दिन भर चलता रहे तो फिर थोड़े ही दिन के बाद चलने में वह असमर्थ हो जाने वाला है। और हम मन को चलाते हैं तो दिन भर, लेकिन धीरे-धीरे मन मंद होता चला जाता है। शक्ति क्षीण होती जाती है कुछ दिनों बाद मन के चलने की दौड़ तो चलती रहती है। लेकिन उपलब्धि कुछ भी नहीं रह जाती। मन को शून्य में ले जाने की, अक्रिया में ले जाने के लिए क्या करें? जैसा मैं कल सुबह कहा थोड़ी देर के लिए, चौबीस घंटे में थोड़े समय के लिए मन की क्रिया को देखने वाले साक्षी रह जाएं। लड़ें मत। क्योंकि लड़ना फिर क्रिया है। इसलिए जो आदमी मन को शांत करने की चेष्टा करता है,वह मन क्रिया करता है, उससे मन कभी शांत नहीं होगा। क्योंकि क्रिया से क्रिया कभी शांत करने के लिए ओम्-ओम् का जाप कर रहा है, एक आदमी मन को शांत करने के लिए भगवान पर ध्यान केंद्रित कर रहा है, वह सब क्रिया कर रहे हैं और क्रिया से क्रिया मिटेगी नहीं रूपांतरित हो सकती है। यह हो सकता है कि मन एक क्रिया छोड़ कर दूसरी क्रिया पकड़ ले। लेकिन सवाल दूसरी क्रिया पकड़ने का नहीं, सवाल अक्रिया में जाने का है। अक्रिया का सूत्र कोई दूसरी क्रिया का सीखना नहीं है। अक्रिया का एक ही सूत्र है साक्षी रह जाना। साक्षी एकमात्र अक्रिया है। सिर्फ द्रष्टा रह जाना। सिर्फ देखने वाला रह जाना। मन चल रहा है, न मालूम संगत-असंगत विचार चल रहे हैं। कभी घड़ी आघ घड़ी को चुपचाप बैठ कर मन को देखते रह जाना। सिर्फ निरीक्षण और वह निरीक्षण भी बिना किसी निर्णय के। कि मन में एक विचार आया कि मैं चोरी करूं तो यह निर्णय भी नहीं लेना है कि बुरा विचार आया। क्योंकि बुरा विचार आया तो फिर क्रिया शुरू हो गई, बुरे विचार का दमन शुरू हो जाएगा। भगवान का विचार आया तो लगा कि बहुत अच्छा विचार आया। तो रस शुरू हो गया। जिसमें रस नहीं है, उसके साथ हम जुड़ जाएंगे। तो मन में क्या चल रहा है। बुरा या भला, कुछ भी चल रहा है, अंधेरा या उजाला, उसे ऐसे देखते रहे हैं कि हमें सिवाय देखने के और कुछ भी नहीं लगे। आधी घड़ी भी चौबीस घंटे में अगर कोई इस भांति मन को देखे कि मन के साथ कुछ भी नहीं करना है, खड़े रहना है और देखना है। तो आप हैरान हो जाएंगे। बहुत शीघ्र आपको पता चलेगा कि मन में अंतराल आना शुरू हो गया है। जब थोड़ी देर के लिए मन शून्य के गर्त में उतर जाना है। थोड़ी देर के निरंतर साक्षी के भाव से ऐसी घड़ी शुरू होगी कि घंटों बीत जाएं और मन खाली रह जाए। फिर क्षमता बढ़ेगी और तब नये प्रयोग किये जा सकते हैं कि मन खाली है ध्यान करते वक्त। फिर उसके घर में बुहारी लगाने लगे हैं और या चरखा कातने लगे हैं। तो ध्यान रखना है कि वह साक्षी का भाव मन के प्रति था, वही साक्षी का भाव चरखे के प्रति या बुहारी के प्रति भी जारी रहेगी। जो मन की क्रिया के प्रति साक्षी भाव था, वह शरीर की क्रिया के प्रति भी जारी रहेगा। तो मैं जो दूसरी बात कह रहा था कि कर्म के पीछे अकर्म का भाव धीरे-धीरे निर्मित हो जाता है। तब आप जीते हैं, बहुलता से जीते हैं, विविधता से जीते हैं और गहराई से जीते हैं। लेकिन तथाकथित जीने की कोई पकड़ आपके ऊपर नहीं रह जाती। ऐसे व्यक्ति को मैं संन्यासी कहता हूं, ऐसे व्यक्ति को मैं आध्यात्मिक खोजी कहता हूं। और ऐसे व्यक्ति के जीवन में वह धीरे-धीरे उतरना शुरू

होता है, जिसका नाम आध्यात्म है, इसका लौकिक जीवन से कोई विरोध नहीं होता। अक्रिया का सूत्र है साक्षी भाव। और साक्षी भाव बहुत घबराने वाली बात है। क्योंकि हमसे कोई कुछ करने को कहे तो एकदम से समझ में आता है। करना हम जानते हैं, अगर कोई हमसे कहे कि राम-राम कहो तो वह समझ में आता है, कोई कुछ और कहे तो समझ में आता है। करना हमारी हमेशा समझ में आता है। साक्षी भाव एकदम से समझ में नहीं आता। क्योंकि वह न करना है। तो थोड़ा सा अनुभव करेंगे तो खयाल में आएगा। मेरे कहने से नहीं। जैसे बगीचे में बैठे हैं, थोड़ा सा एक्सपेरीमेंट, थोड़ी सी क्रिया प्रयोग कि फूल को देखूं, सोचूं नहीं। एक फूल को सिर्फ पांच मिनट देखूं, सोचूंगा नहीं। क्योंकि सोचना एक क्रिया है। सिर्फ देखूंगा, देखता ही रहूंगा कि 'जस्ट टू बी' क्या होता है। तो पांच मिनट बैठने पर कभी किसी क्षण में ऐसा लगेगा कि सोचना बंद था, मैं सिर्फ साक्षी रह गया था। फूल था और मैं था। और बीच में कुछ भी नहीं था। रास्ते पर चल रहे हैं और लोग जा रहे हैं, कभी प्रयोग करते रहें कि मैं सिर्फ देखूंगा, कोई निर्णय नहीं लूंगा कि जो जा रहा है वह राम है कि रावण है। अच्छा है कि बुरा है, हिंदू है कि मुसलमान है। साधु है कि गुंडा है, कोई निर्णय नहीं लूंगा और रास्ते पर चलते हुए लोगों को बस देखूंगा। तो कभी किसी क्षण में जैसा लगेगा कि आदमी जो मैंने देखा और कोई नहीं था, सिर्फ वह आदमी था और मैं था। तो साक्षी का अनुभव धीरे पकड़ में आएगा कि क्या साक्षी का अनुभव है। तो इसको जितना प्रयोग कर सकें साक्षी को उतना करें और घड़ी आध घड़ी को कभी आंख बंद करके किसी कोने में चुपचाप बैठ जाएं और गहरा प्रयोग करें। साक्षी का कि हम सिर्फ देखते रहेंगे। लेकिन एक दिन देखने से हो जाएगा ऐसा मैं नहीं कहता हूं। अक्सर तो यह होगा कि पहले दिन कि मन किसी और क्रिया में संलग्न हो जाएगा जितना और कभी भी नहीं हुआ था। क्योंकि आप उतने खाली कभी भी बैठे नहीं थे कि मन को थोड़ा मौका क्रिया करने का न होता। तो प्राथमिक रूप से जब प्रयोग करेंगे तो मन और जोर से क्रिया करेगा और उससे घबराने की कोई जरूरत नहीं है। उससे कह दें कि करो मेरी कोई रोक नहीं है। मैं सिर्फ देखने के लिए हूं। लेकिन हमारी जो तथाकथित नैतिक शिक्षा है, वह साक्षी नहीं बनने देती तो हमने बुरे विचारों को दबा रखा है और अच्छे-अच्छे विचारों को ऊपर कर रखा है और बुरे-बुरे विचारों को नीचे कर रखा है। तो जब आप साक्षी बनने बैठेंगे तो सारे बुरे विचार ऊपर उठने शुरू होंगे, जिनसे आपको घबराहट होती है, उनको हम खुद दबा देते हैं और जब तक आपके बुरे विचारों को दबाते हैं तब तक आप साक्षी नहीं होते हैं। इसलिए वह सुबह जो हमने कहा कि हमें एक सहज मनुष्य चाहिए और सहज मनुष्य वही होगा जो अपने भीतर की समग्रता को स्वीकार करता है। जो मेरे भीतर है वह है। अगर चोरी का खयाल है, तो है। उससे दबाने से मैं मुक्त होने वाला नहीं हूं। उससे जानना ही है, उसे पहचानना ही है। उससे परिचित होना ही है कि जो भी मेरे भीतर है, उसे मैं मुक्त भाव से मैं प्रकट होने दूंगा और देखूंगा और पहचानूंगा। और बड़े आश्चर्य की बात तो यह है और वह बड़ा रिडीकुलस और बड़ा चमत्कारी है घटना कि जो आदमी अपने भले-बुरे को जो भी उसके भीतर है, उसकी पूर्णता में देखने को राजी हो जाता है। इस देखने का उसके भीतर इतने बड़े विवेक का जन्म होता है, इस देखने के लिए एक इतनी बड़ी ऊर्जा पैदा होती है उसके भीतर, बोध की, अवेयरनेस की, होश की, कि उस बोध की अग्नि में जो बुरा है, वह अपने आप जल जाता है और उसे दबाना नहीं पड़ता। वह अपने आप ही जल जाता है। जैसे कि एक अंधे आदमी को एक कमरे के बाहर लाना हो, तो वह पूछेगा कि कैसे जाऊं, कहां से जाऊं, रास्ता कहां है? द्वार कहां है? उसे स्वयं ही दिखाई पड़ रहा है कि इसलिए पूछ रहा है। पूछ कर भी जाएगा, फिर भी संभावना है कि किसी दीवाल से टकरा जाए। किसी खैमे से टकरा जाए। टकरा कर वह फिर घबरा जाएगा और फिर पूछेगा कि कैसे जाऊं, कहां से जाऊं, रास्ता कहां है, द्वार कहां है? लेकिन अगर आपके पास आंख है तो न तो आप पूछते हैं कि द्वार कहां है, न आप सोचते हैं कि द्वार कहां है? आपको जाना है और उठते हैं और निकल जाते हैं, यह भी नहीं सोचते कि द्वार कहां है? उठते हैं और निकल जाते हैं। खयाल भी नहीं होता है द्वार का, दिशा का। उठते हैं और निकल जाते हैं। यह जो मनुष्य के जीवन की अनैतिकता है, उस आत्मिक अंधेपन की अनिवार्य टकराहट है, कि कहीं भी जाता है तो टकरा जाता है। वह टकराहट सिर्फ एक बात की सूचना है। वह आपके बुरे होने की सूचना नहीं है। वह इस बात की सूचना है कि आपके पास जितना जागा हुआ विवेक चाहिए उतना नहीं है। इसलिए बुरा आदमी मौन के योग्य नहीं, केवल दया के योग्य है। खुद बुराइयां भी दया के योग्य हैं। दया के योग्य इसलिए हैं कि वह केवल सूचक है कि हमारे पास कोई आंख नहीं है, जो दरवाजे को देखे और बाहर हो जाए। तो हम

जगह-जगह ठकरा जाते हैं, उठते हैं, चलते हैं, और टकरा जाते हैं। वह टकराने की हमारी सारी अनीति और बुराइयां बनती जाती हैं। और जितना हम बचना चाहते हैं टकराने से, उतनी ही हमारी टकराने की संभावना बढ़ती है। अगर अंधा पूछ ले कि बाएं रास्ता है और हिम्मत करके बाएं चला जाए। तो शायद निकल भी जाए। लेकिन अंधा हिम्मत करके भी जा नहीं पाता। बाएं है, यह जानकर भी, लकड़ी टटोलता है, डरता है कि कहीं दाएं नहीं पहुंच जाऊं, कहीं जरा-सा चूक न हो जाए और जितना वह भयभीत होता है, उतना ही उस दरवाजे से चूक जाने की संभावना बढ़ती चली जाती है। और कई बार ऐसा होता है कि जो हम नहीं करना चाहते हैं, वही हम कर गुजरते हैं। जैसे नया आदमी साइकिल चलाना सीखता है। उसे दिखाई नहीं पड़ता हो कि एक पत्थर पड़ा हुआ है। अब इतना बड़ा रास्ता है, उस पर एक छोटा-सा पत्थर पड़ा हुआ हो और वह साइकिल वाला अगर आंख बंद करके भी चलाए तो भी उस पत्थर से टकराने की संभावना सौ में से एक है। रास्ता इतना बड़ा है कि अगर आंख बंद करके भी चलाए तो भी कोशिश करके तो भी उस पत्थर से टकरा सकते हैं। तो रास्ता इतना बड़ा है कि कहीं से भी निकला जा सकता है। लेकिन नया साइकिल चलाने वाला देखता है कि वह पत्थर पड़ा हुआ है और सोचता है कि कहीं मैं उस पत्थर से टकरा न जाऊं और उसकी नजर में सारा रास्ता खो जाता है, सिर्फ पत्थर ही रह जाता है। सब रास्ता खतम हो गया, लेकिन उसे लगता है कि कहीं में उस पत्थर से टकरा न जाऊं, और धीरे-धीरे सिर्फ पत्थर ही उसे दिखता है और कहें मैं उससे टकरा न जाऊं और सौ में से निन्नयानबे मौके ऐसे हैं कि वह पत्थर से टकरा जाएगा। और उस टकराहट में पत्थर का कोई कसूर नहीं है। उस टकराहट में सिर्फ बचने की तीव्र चेष्टा थी। उस तीव्र चेष्टा ने उसका ध्यान केंद्रित किया और जिस बात पर ध्यान केंद्रित हुआ वह फलित हो जाने वाला है। यह ला आफ रिवर्स इफेक्ट है। हम जो नहीं चाहते हैं वह रोज हो जाता है। हम नहीं चाहते हैं इसीलिए हो जाता है। उतना हमें दिखाई नहीं पड़ता। एक बात ध्यान में रखने की है कि मन के साथ लड़ाई लेना हमने बंद कर दी है। क्योंकि सामने लड़ाई ली तो जो आप चाहते हैं, वह नहीं हो पाता है। और जो नहीं चाहते हैं वही होना संभव है, तो लड़ाई लेना बंद कर दें क्योंकि मन के साथ कोई झंझट नहीं करें और उस साक्षी के भाव से आपको क्रिया करनी है जो शून्य में ले जाती है। शून्य जैसा मैंने कहा कि प्रभु का द्वार है, जिसे हर मनुष्य पाने की कोशिश करता है।

एक मित्र पूछ रहे हैं कि सामाजिक मुक्ति कैसे हो सकती है।

पहली तो बात यह है कि जिस मुक्ति की मैं बात कर रहा हूं, वह यह है कि सामाजिक मुक्ति कभी होती नहीं, वह मुक्ति नितांत वैयक्तिक है, जिस मुक्ति की बात मैं कर रहा हूं, वह मुक्ति नितांत वैयक्तिक है। सिर्फ सामाजिक मुक्ति की ही हमें प्रयास नहीं करना होगा। उस मुक्ति की बात मैं नहीं करता, यह मुक्ति तो नितांत वैयक्तिक है, यह सिर्फ एक व्यक्ति की होती है, सबकी हो जाती है। लेकिन वह भी व्यक्ति-व्यक्ति की। इसका कोई सामूहिक रूपांतरीकरण नहीं हो सकता है। लेकिन आप शायद सामूहिक मुक्ति का दूसरा ही अर्थ कर रहे हैं। शोषण विहीन, वर्ग विहीन—समानता का, स्वतंत्रता का समाज। मेरी दृष्टि में ऐसा समाज कभी भी नहीं बन सकता। जब तक कि व्यक्ति-व्यक्ति की चेतनाएं जिस मुक्ति की मैं बात कर रहा हूं—उसको यह उपलब्ध न हो जाए, तब तक आपकी सारी चेष्टाएं एक तरह की शोषण को बदल कर दूसरे तरह की शोषणों को स्थापित करने वाले होंगे और कुछ भी नहीं होगा। आज तक दुनिया में बहुत से क्रांतिकारी हुए और उन सारे क्रांतिकारियों की दृष्टि है कि समाज शोषणों से मुक्त हो जाए। लेकिन उन्हें इस बात की फिकर ही नहीं कि अब शोषण समाज में कैसे आ गया और क्यों आ गया। जैसा आदमी है वैसा आदमी हमेशा शोषण की व्यवस्था निर्मित करेगा, यह बात निराशापूर्ण मालूम हो सकती है, लेकिन जो सच है वही मैं कहना चाहता हूं और पसंद करता हूं। जैसा आदमी है, वैसा आदमी कभी भी यह नहीं बर्दाश्त करेगा कि सभी आदमी समान हो जाएं। और जब वह कहता भी है कि सारे आदमी समान हो जाएं तब वह यह कहता है कि अभी मुझसे जो ऊपर हैं, यह मेरे बर्दाश्त के बाहर है। वह कभी नीचे के आदमियों के लिए नहीं कहता है कि मेरे समान हो जाएं। यह सारी समानता की बकवास सिवाय इस भीरुता के और किसी चीज के लिए पैदा नहीं होगी। कोई आदमी यह बर्दाश्त नहीं करना चाहता कि कोई आदमी उससे ऊपर हो। और आप याद रखें कि जब तक कोई आदमी यह बर्दाश्त नहीं करना चाहता कि यह आदमी मुझसे ऊपर है, तब तक वह आदमी किसी को नीचे रखने में भी सुख अनुभव अनिवार्य रूप से करेगा। तब हम यह कर सकते हैं कि ऊपर का समाज बदलेंगे। तो समाजवादी समाज होगा,

पूंजीवादी समाज नहीं होगा और समाजवादी तरह का शोषण होगा और समाजवाद ढंग की वर्ग व्यवस्था होगी। समाजवादी ढंग की ऊंची और नीची नीतियां होंगी। अच्छी तरह का समाज हम बना सकते हैं और नाम हम कुछ भी दे सकते हैं। लेकिन मनुष्य जैसा है, ऐसे मनुष्य के साथ कोई सामाजिक समानता की संभावना नहीं है। सामाजिक समानता की संभावना ऐसे मनुष्यों के साथ कि जिनको सारा व्यक्तित्व केंद्र के अहंकार बिखर बिखर गया हो। अहंकार के कारण सामाजिक असमानता का, वह आर्थिक घटना नहीं है कि आप संपत्ति बांट दें और लोग समान हो जाएं, वह इतना आसान नहीं है। संपत्ति का मजाक सिर्फ अहंकार में है। और संपत्ति को इकट्ठा करने की वृति भी अहंकार से पैदा होती है। वह कल दूसरे ढंग से पैदा होगी। यहां तक हो सकता है कि एक आदमी का सारा धन छोड़ दे और महात्मा बन जाए। लेकिन फिर भी वह इस खोज में रहता है कि मुझसे बड़ा तो कोई महात्मा नहीं है, इस खोज में हमेशा लगा रहेगा। और यदि उसको कोई कह दे कि काशी में आपसे भी बड़े महात्मा हैं, तो वह उतना ही दुख अनुभव करता है जितना एक गरीब आदमी अनुभव करता है कि मुझसे भी गरीब लोग हैं। यह जो जितने वर्गीय जगत है, यह जितने शोषण में विभाजित और वर्गों में टूटी हुई दुनिया है, यह दुनिया जैसे आदमी हैं, उसकी निष्पत्ति हुई है, इससे यह निकली हुई है और आदमी वहीं मान लेता है और चिल्लाने लगता है कि हर आदमी को समान होना चाहिए। समान कैसे होना चाहिए। आदमी एक भी नहीं, जो समान होना चाहता है। एक आदमी नहीं पृथ्वी पर और कहता हो और जो एक दूसरे के समान होना चाहता हो। बहुत गहरे में जाने पर पता चलता है कि वह चाहता है कि मैं दूसरे के ऊपर हूं। और हम अच्छी-अच्छी बातें भी करते हैं। तब भी अपने बच्चे को यही सिखाते कहते हैं कि देखो वह उतना झूठ बोल रहा है, वह उतना सत्य बोल रहा है, वह उतना सच्चरित्र है, तुझे भी उतना सच्चरित्र होना चाहिए, तब भी वह ऊंचा होने के लिए सिखा रहा है—चाहे वह धन से हो, चाहे वह धर्म से हो, ज्ञान से, बुद्धि से, बंटवारा कर रहा है। मेरी दृष्टि से न तो मार्क्स, न तो गांधी, न तो विनोबा सफल हो सकते हैं। एक बुनियादी भ्रांति पर सारा आयोजन। उनकी करुणा ठीक है, उनकी दया ठीक है कि जैसा हो जाए। लेकिन आपके सपने देखने से कुछ नहीं होगा। हिम्मतवर लोग हैं कि जो ऐसे सपने देखते हैं, जो आदमी के बिलकुल खिलाफ हो सपना। हिम्मतवर लोग हैं, जो देख रहे हैं हजारों साल से। लेकिन उन सपनों से कुछ होने वाला नहीं है। कोई आदमी सपने नहीं देखते तो आजादी कोई रुकने वाली चीज थी। जिन मुल्कों ने सपने नहीं देखे, वहां आजादी नहीं आई? यह सब तो बचकानी बातें हैं, जिनको हम खूंटी पर टांग देते हैं कि ऐसा हो गया और आजादी क्या आ गई...

...आप जो कहते हैं वह संक्षिप्त में इतनी ही बात कहते हैं कि मनुष्य का जैसा मन है, वह व्यवस्था के कारण पैदा हो गया है। यह जैसी व्यवस्था है उसके कारण यह मन है। आप कहते हैं कि यदि हम व्यवस्था को बदल दें और ऐसी व्यवस्था हो कि मनुष्य को दूसरी व्यवस्था में ले जा सकें। तो समझने की बात इसमें इतनी ही है कि यह व्यवस्था मनुष्य के मन से निकली है या इस व्यवस्था से मनुष्य का मन निकलता है। अगर मनुष्य का मन इस व्यवस्था से निकलता है तो आप ठीक कहते हैं—गांधी ठीक कहते हैं और मार्क्स ठीक कहते हैं कि हम समाज की व्यवस्था को बदलें तो मनुष्य के मन को बदलने की व्यवस्था हो सकती है। लेकिन यदि यह व्यवस्था अंततः मनुष्य के मन से निकलती है तो गांधी गलत कहते हैं और मार्क्स भी गलत कहते हैं। और मेरी समझ यह है कि सारी व्यवस्था जो भी निकली और आज निकल रही है—सर्वोदय या समाजवाद वह भी मनुष्य के मन से निकल रही है। वह भी कोई व्यवस्था नहीं है, जो गांधी को पैदा कर रही है। कोई व्यवस्था नहीं है जो विनोबा को पैदा कर रही है। विनोबा को कौन-सी व्यवस्था पैदा कर रही है? गरीबी और शोषण...गरीबी और शोषण है न? तो आप और मैं या तीसरा व्यक्ति विनोबा नहीं हुआ जा रहा है? व्यवस्था नहीं पैदा कर रही है। गरीबी और शोषण की तरफ एक खास तरह की एक मन की जो वृत्ति है। विनोबा के पास एक मन है, जो उस गरीबी से पीड़ित हो रहा है। आपके पास एक मन है, जो उस गरीबी से खुश और प्रसन्न हो सकता है। हम उस जीवन से जो कुछ निष्कर्ष व नतीजे लेते हैं, वह निष्कर्ष मन के निष्कर्ष हैं और वह मन अगर व्यवस्था से बनता है, तो आप समझ नहीं रहे हैं कि...आप कैसी बात कर रहे हैं। जो कि गांधी, विनोबा, महावीर, बुद्ध सबके खिलाफ जाती मूलता से। मूलता खिलाफ इसलिए जाती कि अगर मन व्यवस्था से निर्मित है तो अंततः कम्युनिस्ट ठीक कहते हैं, समाज की सारी व्यवस्था बदल गई, सारी शिक्षा बदल गई, शरीर में जहां-जहां मनुष्य के जैसे तत्व हैं, जो उसे भिन्न बनाते हैं, उनको निकाल लें, हारमोन बदल

दें, उसके भीतर की वाइटेलिटी बदल दें और अगर मन की कुछ भी कुछ गड़बड़ हो, उसके लिए मानसिक व्यवस्था कर दें और मन भी कुछ गड़बड़ करता हो, तो उसको विद्युत की व्यवस्था से साफ कर दें, तो जरूर मैं मानता हूं कि इतने दूर तक राज्य में हम व्यवस्था बदल देंगे—फिर अर्थ बदले, समाज का ढांचा बदले और अंततः मनुष्य के मन को भी हम बुद्धित्व की व्यवस्था का इंतजाम कर लें तो जरूर यह सच है कि जैसा हम आदमी से चाहें वैसा हो सकता है। लेकिन यह आदमी नहीं, वह मशीन रह जाएगा। वह आदमी रहेगा ही नहीं। आदमी वह इसीलिए है कि वह आदमी स्वतंत्र है और मन से ढंग से जीने के लिए वह मुक्त है। यह जो समाज विकसित हुआ है वह मनुष्य के मन में तो छिपा हुआ है, उसका विस्तार है। मेरी बात गलत हो सकती है, इससे चिंतित होने की जरूरत नहीं है। मेरी बात बिलकुल गलत हो सकती है। लेकिन मेरी जो समझ है वह आपसे कह देना चाहता हूं। मेरी समझ यह है कि जो भी हमने निर्मित किया है—चाहे वह फ्यूडिलज्म हो, चाहे वह केपिटलिज्म हो, चाहे वह सोसियालिज्म हो। तो मनुष्य के मन का भी सारा का सारा विस्तार और व्यवस्था है। और वह सारा का सारा असफल होता चला गया है। समाजवाद आया रूस में और नाम समाजवाद का रह गया। आया समाजवाद की जगह स्टेट केपटलिज्म। आई एक मेनेजोरियल व्यवस्था। जहां पूंजीपति बदल गया। और व्यवस्थापक पूंजीपति की जगह हो गया और इसने जितना उपद्रव किया, उतना पुराने पूंजीपति वाद ने कभी भी नहीं किया था। अकेले स्टालिन ने कोई सात लाख से लेकर एक सौ बीस लाख तक लोगों को मारा। हिटलर भी पैदा हो रहा है। वह भी हम नहीं कर रहे हैं कि हमारे मन से पैदा हो रहा है। और गांधी और विनोबा भी जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि हिटलर और स्टालिन लेकिन वह कुछ कहां से होगा। आप कोई समाज को हित पहुंचा पाएंगे ऐसा नहीं है। उसके मूल को पकड़ कर ही हित पहुंचाया जा सकता है। और मैं यह भी नहीं कर रहा हूं कि ऐसा समाज निर्मित न हो, जो मुक्त न हो। ऐसा मैं कह भी नहीं रहा हूं। और यह मैंने कहा भी नहीं कि जो गांधी और विनोबा की कल्पना करते हैं, वह कल्पना न की जाए, यह भी मैंने नहीं कहा। कहा मैंने यह कि गांधी और विनोबा असफल होने को आबद्ध हैं और कहा इसलिए कि विनोबा और गांधी की सारी चिंतना इस आदमी को स्वीकार करके की गई हैं और सब आदमी का सामान किया जाए और कैसे जमीन वितरित की जाए और कैसे उस आदमी का सामाजिक ढांचा बदला जाए, उस आदमी की स्वीकृति के साथ चल रही है। मेरा कहना इतना है कि उस आदमी की स्वीकृति के साथ वह सब असफल होने को आबद्ध हैं। यह आदमी जैसा है उस आदमी से जो निकल रहा है, वह ज्यादा सच है और वह जो कह रहे हैं, वह सपना है। मेरा जो कहना है वह इतना ही है कि अगर उस सपने को कभी पूरा भी करना हो तो यह आदमी जैसा है उस आदमी के आमूल मन को बदले की दिशा में सोचना होगा। आपमें से किसी ने कहा कि बुद्ध, क्राइस्ट, महावीर हजारों साल से सोच रहे हैं कि आदमी का मन बदला जाए तो सब हो जाएगा। तो मेरा कहना है कि महावीर और बुद्ध आदमी का मन बदला जाए यह जरूर सोच रहे हैं, लेकिन मन बदलने की जो व्यवस्था दे रहे हैं, वह बुनियादी रूप से गलत है, इसलिए यह नहीं हो पाया है। मुझे तकलीफ यह है कि महावीर और बुद्ध यह जरूर सोच रहे हैं वही कि आदमी का मन बदला जाए तो व्यवस्था बदल जाएगी। वह नहीं हो पाया। आपके इतने सोचने से कि आदमी का मन बदल जाए और आप जो कहते हैं कि मन बदल जाएगा यह जरूरी नहीं है। महावीर और बुद्ध आदमी के मन को बदल नहीं पाए। क्योंकि महावीर और बुद्ध की सारी चिंतना परमाद्गामी है, इस बात के लिए चिंतना नहीं है कि एक दूसरा मन के दमन से सारी उनकी व्यवस्था है और मन के दमन से मन कभी भी बदला नहीं जा सकता। आप सबका सारा धर्म, सारा योग और सारे शास्त्र यह कह रहे हैं कि मन को बदला जाए, लेकिन मन को बदलने की जगह वे मन को तोड़ने का उपाय व्यवस्थित कर रहे हैं। कि मन कैसे तोड़ा जाए और मन को कैसे दबाया जाए। तो यह जो मन का तोड़ना है, वह सफल नहीं होता है। इससे आप यह न समझ लें कि समाज को बदलने वाले सफल हो गए असफल हो जाने वाले। दृष्टि तो उनकी बिलकुल ठीक थी। महावीर और बुद्ध की, क्राइस्ट की, और कृष्ण की कि आदमी का मन बदला जाए। इस माने में वे ठीक निष्कर्ष पर पहुंच गए थे कि मन बदलेगा तो सामाजिक व्यवस्था बदलेगी। लेकिन मन कैसे बदल जाए, इसमें बिलकुल चूक गए। और इसलिए वह नहीं हो पाया। यह मेरा गांधी और विनोबा से विरोध है कि वे समाज को बदलने के मौलिक जगह दे रहे हैं। आदमी को स्वीकार कर रहे हैं। महावीर और बुद्ध से मेरा विरोध है कि वे आदमी को बदलने की जो व्यवस्था दे रहे हैं, वह व्यवस्था गलत है। अब क्या ठीक व्यवस्था हो सकती है, इस संबंध में जब कभी दुबारा आऊंगा तो

विस्तार से बात करूंगा उस पर। सबको प्रणाम।